गणेश

लेखक

सम्पूर्णानन्द

प्रकाशक

काशी विद्यापीठ

बनारस

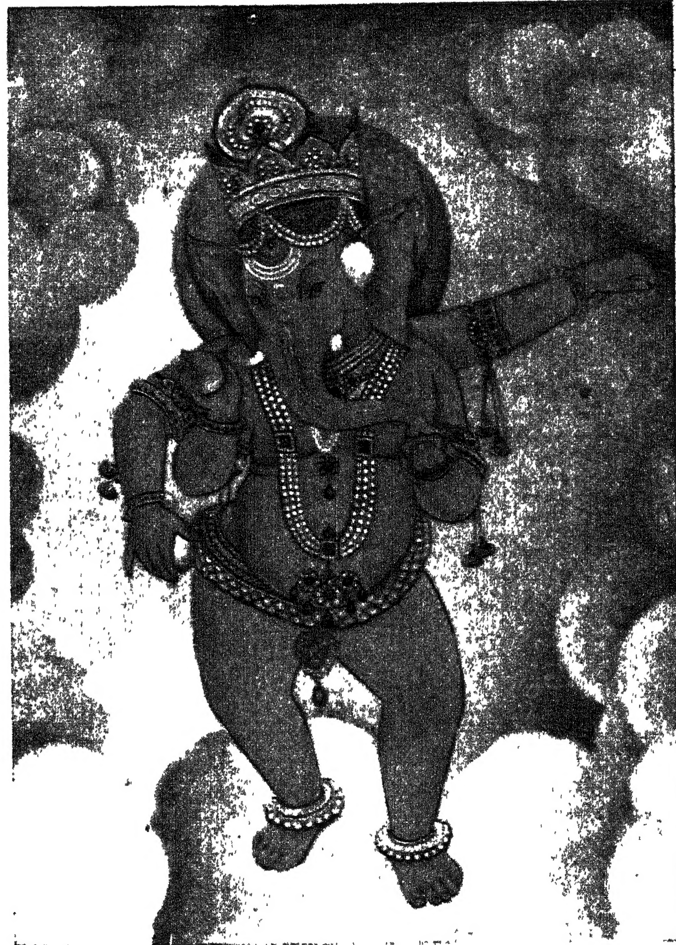
प्रथम संस्करण] संवत् २००१ [मूल्य २॥)

प्रकाशक

विश्वनाथ शर्मा
मन्त्री, प्रकाशन-विभाग
काशी विद्यापीठ
बनारस

10 5000.

मुद्रक
विश्वनाथ प्रसाद
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय
काशी, २००१



ज्ञान०, काशी।



ॐ

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनां उपमश्रवस्तम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणाम् ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ।।

विघ्नाय विघ्ननाशाय,
संख्यातीताय मायिने ।
रुद्राय भद्ररूपाय,
गणाधिपतये नमः ।।

भूमिका

लड़कपनके दिनोंकी बात है। घरपर जब कभी कोई पूजा होती तो गणेशजीकी स्तुतिमें यह श्लोक सुननेमें आता था :

गजाननं भूतगणादि सेवितं, कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं, नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम्॥

श्लोक का अर्थ सरल है, हिन्दू घरोंके संस्कृत न जाननेवाले बच्चे भी समझ सकते हैं। इसमें विघ्नेश्वर शब्द मुझको खटकता था। एक बार न रहा गया, मैंने अपने पुरोहितजीसे पूछा। उन्होंने कहा 'यही, विघ्नोंके स्वामी, उनके नाश करनेवाले'। मुझे यह व्याख्या ठीक न जँची, मैंने फिर पूछा कि यदि विघ्नेश्वरका ऐसा अर्थ लगता हो तो फिर जगदीश्वरका अर्थ होगा जगत्का नाश करनेवाला। इसका कोई उत्तर उनके पास न था, बात वहीं समाप्त हो गयी। इसमें इन पंडित-जीका कोई विशेष दोष न था। गणेशजी क्यों विघ्नेश्वर कहलाते हैं और विघ्नेश्वर होते हुए शोक विनाशकारक कैसे हो गये यह बात उनके कर्म्मकाण्ड सिखलानेवाले गुरुओंको भी ज्ञात न रही होगी। इस ओर कभी ध्यान ही नहीं जाता। गृहस्थ यजमान शंका करते ही नहीं, इसलिए इस विषयकी खोज भी नहीं होती।

जब बड़ा हुआ तो इस मन्त्रकी ओर ध्यान गया जो गणेशजीके लिए पढ़ा जाता है :

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनान्त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्॥

इसमेंका गणपति शब्द तो यह बतलाता था कि मन्त्र गणेशजीसे सम्बन्ध रखता है परन्तु गर्भ शब्दका दो बार आना खटकता था। अपने यहाँ पूजापाठ करानेवाले पण्डितजीसे कोई आशा नहीं थी, पण्डितसमाजकी गतिविधि देखकर इस बातकी भी कोई विशेष आशा नहीं थी कि काशीका कोई विद्वान् पूछनेपर भी इस शङ्काके निवारण करनेका कष्ट करेगा। स्वर्गीय पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र कृत सटीक रुद्री मोल ली। उसमें उन्होंने इस मन्त्रका जो अर्थ किया है उसमें विलक्षणता यह है कि संस्कृतमें तो प्राचीन परम्पराका अनुसरण किया गया है, परन्तु हिन्दीमें नये ढङ्गकी मीमांसा की गयी है जो व्याकरण-सम्मत भी नहीं है। 'आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्' का अर्थ यह बतलाया गया है कि मैं आपके द्वारा गर्भसे पैदा किया गया हूँ, आपने गर्भसे जन्म नहीं लिया है। इसके आगे भी उन्होंने जो लिखा है वह स्पष्ट ही इस उद्देश्यसे लिखा गया है कि कोरे हिन्दी जाननेवाले इस मन्त्रके प्रकृत अर्थको न समझें और उस प्रसङ्गसे भी ठीक-ठीक अभिज्ञ न होने पावें जिसमें यह मन्त्र आया है। बहुत सा आध्यात्मिक धुआं उठाकर सच्चा अर्थ छिपा दिया गया है। परन्तु जो कुछ उन्होंने लिखा है उसमें भी ऐसी कोई बात नहीं आती जिससे इसका गणेशजीके साथ कोई सम्बन्ध मिलता हो। ज्वालाप्रसादजीने इसको ब्रह्मणस्पतिपरक माना है। इसके बरसों बाद जब संस्कृतमें कुछ और प्रवेश हुआ तो शुक्लयजुर्वेद संहिताको उवट और महीधरके भाष्योंके साथ पढ़ गया। उन दोनोंने मन्त्रका जो अर्थ किया है वही उस अध्यायके प्रसङ्गमें बैठता है। उसीका समर्थन श्रौतसूत्रोंसे और ब्राह्मण ग्रन्थोंसे होता है। इसमें शङ्का करनेके लिए कोई स्थल नहीं रह जाता कि इस मन्त्रमें अश्वमेधके अश्वको गणपति कहा गया है। यजुर्वेदके बाद मैंने शेष तीनों संहिताओंको भी सभाष्य पढ़ा। मेरा यह दावा नहीं है कि मैं मूल या भाष्यको पूरा-पूरा समझ गया पर इतना तो निश्चितरूपसे कह सकता हूँ कि किसी संहितामें गणेशजीका पता नहीं चला। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी लड़कपन की उठी जिज्ञासा तो अतृप्त रह ही गयी, उसके साथ एक और बड़ी जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी : गणेशजी कौन हैं? इनकी पूजा कबसे होने लगी? एक ओर शिवपुराणमें गणेशजीके जन्मकी कथा पढ़ चुका था,

दूसरी ओर तुलसीकृत रामायणमें पढ़ा हुआ यह संस्कार चित्तपर जमा हुआ था कि गणेशजी अनादि सुर हैं, इसलिए उनके पितामाताके विवाहमें भी उनका पूजन हुआ था, तीसरी ओर वेदोंमें जो हिन्दूधर्म्मके मूल प्रमाण हैं गणेशजीका अस्तित्व मिलता न था, चौथी ओर यह भी देखता था कि विनायकोंकी गणना भूतप्रेतपिशाचोंके साथ की जाती है और उनको शान्त करनेके लिए उपाय किये जाते हैं और पाँचवी ओर यह अकाट्य बात थी कि आज घर-घर मङ्गल कृत्योंके आरम्भमें गणेशजी-की पूजा होती है। इन बातोंने मुझे गणेशसम्बन्धी खोजमें प्रवृत्त किया।

यह खोज कई वर्षोंतक चलती रही। राजनीतिके क्षेत्रमें काम करनेवालेको यों भी समय कम मिलता है, फिर बीच-बीचमें सर्कारकी कृपासे जेल जाना पड़ता था, काम रुक जाता था। लगभग छः सात वर्ष हुए ऐलिस गेटी रचित 'गणेश' नामकी पुस्तक देखनेमें आयी। अनेक विद्वानोंके वर्षोंके अनुशीलनका परिणाम इसमें एकत्रित है। कई बातोंकी ओर मेरा ध्यान पहिले इसको ही पढ़कर आकृष्ट हुआ। इस पुस्तकने मेरा काम बहुत हल्का कर दिया। इसकी उपादेयता विवादका विषय नहीं हो सकती। यह हमारे सांस्कृतिक पतनका चिन्ह है कि गणेश जैसे लोकप्रिय भारतीय उपास्यके सम्बन्धमें जितना ज्ञातव्य विषय इस विदेशी विदुषीने संकलित किया है उतना इसके पहिले किसी भारतीय विद्वानकी लेखनीसे एक जगह न लाया जा सका।

मैंने प्रस्तुत पुस्तकमें जो कुछ लिखा है उसे इस विषयका अन्तिम निर्णय तो नहीं कह सकते परन्तु इसकी बहुत कम सम्भावना है कि मथितार्थमें आगे चलकर कोई बड़ा परिवर्तन होगा या वह उलट जायगा। भारतमें या भारतके बाहर नयी मूर्तियाँ मिल सकती हैं, बहुतसी नयी पुस्तकें भी मिल सकती हैं, परन्तु नये वेद या नये पुराण नहीं मिल सकते। अब तक जो भी मूर्तियाँ मिली हैं वह गुप्तकालके आसपासकी हैं अर्थात् उनका निर्माण महायान बौद्ध सम्प्रदायके पीछेकी है। यदि कोई नयी सामग्री उपलब्ध हुई तो वह सौ दोसौ वर्ष और पहिले जा सकती है परन्तु ऐसी कोई सामग्री नहीं मिल सकती जो गणेशजीको वैदिककालतक पहुँचा दे।

गणेशजीका जो कुछ स्वरूप मैं समझ पाया हूँ वह आठवें अध्यायमें दिया हुआ है। थोड़ेमें यों कह सकते हैं कि वैदिककालमें जब आर्य्य लोग सप्तसिन्धव प्रदेशमें रहते थे, गणेशकी पूजा नहीं होती थी। आर्य्यलोग गणेशका अस्तित्व नहीं जानते थे। जब वह पूर्वकी ओर बढ़े तो उनका अनार्य्योंसे सम्पर्क बढ़ा और बहुतसे अनार्य्य आर्य्य बस्तियोंमें बस गये। विजितपर तो विजेताकी संस्कृतिका रङ्ग चढ़ा ही परन्तु विजेता भी अछूता न बच सका। उसकी संस्कृति और आचार विचारपर अनार्य्य प्रभाव पड़ कर रहा। विद्वानोंके विरोध करते रहनेपर भी निम्न कोटिके लोगोंने कुछ नये देव-देवियोंको अपनाया। ऐसे देवदेवी असभ्य, जङ्गली लोगोंमें सर्वत्र पुजते हैं। इनकी आकृति पशु पक्षियों की सी होती है या प्रेत पिशाच जैसे मुँह और दाँत होते हैं। आज भी बहुतसे गावोंमें ऐसे ग्रामदेवोंकी मिट्टी या लकड़ीकी मूर्तियाँ देख पड़ती हैं। प्रायः सभी क्रूरकर्म्मा होते हैं। भाँतिभाँतिकी पूजा करके इनको शान्त किया जाता है। अपने अनार्य्य पड़ोसियोंसे आर्य्योंने नाग, गधेपर सवार होनेवाली शीतला और कुत्तेपर चढ़नेवाले भैरवके साथ मूषकवाहन हस्तिमुख विनायकको भी लिया। विनायक ग्रामदेव थे, गाँवगाँव या प्रदेशप्रदेशमें इनकी आकृतियों और कथाओंमें थोड़ा बहुत अन्तर था। इस बातकी ध्वनि पुराणोंसे स्पष्ट मिलती है। पीछेसे जब विनायकका प्रवेश हो ही गया तो विद्वानोंने गणितकी महत्तमसमापवर्तक क्रियाके ढङ्गसे एक सूण्ड, एक दाँत, रक्त वर्णवाले रूपको स्थिर किया परन्तु पुरानी स्मृतियाँ बनी हुई हैं। पुस्तकमें जो अवतरण दिये गये हैं उनसे प्रतीत होगा कि कहीं जन्मके समय पाँच सूण्ड होनेकी कथा है कहीं ऐसा वर्णन आता है जो गणेश और स्कन्द दोनोंके लिए लागू हो सकता है, कहीं वाराह जैसे मुखका उल्लेख है। रङ्ग कभी लाल, कभी श्वेत और कभी काला बताया गया है। गणेश पुराणमें कहा है:—

ध्यायेत्सिंहगतं विनायकममुं दिग्बाहुमाद्ये युगे,
त्रेतायां तु मयूरवाहनममुं षड्बाहुकं सिद्धिदम्।

द्वापरे तु गजाननं युगभुजं रक्तांगरागं विभुम्,
तुर्ये तु द्विभुजं सितांगरुचिरं सर्वार्थदं सर्वदा ॥

इसका तात्पर्य्य यह है कि सतयुगमें विनायक सिंहवाहन और दशभुज थे, त्रेतामें मयूरवाहन और षड्भुज थे द्वापरमें गजानन चतुर्भुज और कलियुगमें श्वेतवर्ण और द्विभुज हैं। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि द्वापरके पूर्वके लिए विनायक नामका प्रयोग किया है। द्वापरमें गजानन कहा है, कलियुगमें वह सर्वार्थ देनेवाले हो गये हैं।

विनायक विघ्नकर्ता थे, अच्छे कामोंमें भी बाधा डालते थे। इसलिए प्रत्येक शुभकृत्यके आरम्भमें उनको मनाना पड़ता था। कुछ करस्वरूप भेंट करके उनका विसर्जनकर दिया जाता था, तब मूलकृत्यमें हाथ लगता था। दुष्ट देवोंकी कल्पना आर्य्य बुद्धिके प्रतिकूल थी। विनायकका कायाकल्प हुआ, वह जहाँ विघ्नराज थे वहाँ धीरे धीरे मङ्गलकर्ता बने। जहाँ भावी विपत्ति टालनेके लिए उनको प्रसन्न किया जाता था वहाँ उनसे सिद्धि माँगी जाने लगी। हर कामके आरम्भमें पूजा तो होती ही थी, धीरे धीरे लोग इस पूजाका वास्तविक उद्देश्य भूल गये और विनायकपूजा मङ्गलकृत्योंका अनिवार्य्य अङ्ग बन गयी। इस परिवर्तनमें सैकड़ों वर्ष लगे होंगे परन्तु विनायकका धैर्य्य अटूट था। वह दृढ़ताके साथ आगे बढ़ते गये। जब देव हो गये तो उनकी पूजाकी पद्धति भी बनी, देवोंके वेदोक्त पवित्र त्रयस्त्रिंशत् वर्गमें उनके लिए स्थान निकाला गया, ढूँढ़ ढाँढ़ कर दो एक वेदमन्त्र भी उनको दिये गये, उनके नामपर एक उपनिषद्की भी रचना की गयी। उनके उपासकोंका पृथक् सम्प्रदाय प्रवर्तित हो गया, उनका परमात्मा और ब्रह्म से अभेद प्रतिपादित किया गया। परन्तु उनकी प्रगति इतनेसे ही न रुकी। उन्होंने बौद्धधर्म्ममें प्रवेश किया। इसके बाद उनकी दिग्विजय यात्रा आरम्भ हुई। एक ओर उनके वैदिकमतावलंबी, आजकलके नामसे हिन्दू, उपासक उनको यवद्वीप बोर्नियो और बालिकी ओर लेगये, दूसरी ओर वह अपने बौद्ध अनुयायियों-के साथ तुर्किस्तान, तिब्बत, चीन और जापान पहुँचे। चीनजापानमें उनका अभूतपूर्व विकास हुआ। साधना और निर्वाणकी गुप्त कुञ्जी उनके हाथमें आगयी।

पृथिवी भरमें किसी दूसरे उपास्यके जीवनकी गणेश चरितके साथ तुलना नहीं हो सकती। आज बुद्ध, ईसा और मुहम्मदके अनुयायी देश विदेशमें करोड़ों हैं परन्तु इन लोगोंके स्वरूप और पदमें कोई परिवर्तन, कोई वृद्धि, नहीं हुई। विघ्नकर्ता ग्राम्य अपदेवसे उठकर सर्वदेवाग्रगण्य बनना, फिर परमात्मा और ब्रह्म दृष्टिसे मान्यता लाभ करना, विदेशोंमें पहुँचकर वैरोचन और अवलोकितेश्वर बोधिसत्वोंसे तादात्म्य प्राप्त करके योगके अनिर्वचनीय रहस्योंका प्रतीक बनना, गणेशजीका ही काम है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्वके सामने सिर झुकाना ही पड़ता है।

इस रोचक कहानीका मुख्य अंश मैंने इस पुस्तकमें दिया है। विस्तार और बढ़ाया जा सकता था, चित्रोंकी संख्या बढ़ायी जा सकती थी। पुराणों और तन्त्रोंमें गणेशजीके सम्बन्धमें विशाल वाङ्मय भरा है। भारतमें और बाहर सैकड़ों सुन्दर और विलक्षण मूर्तियाँ मिलती हैं। यह मूर्तियाँ अशोकके समयके बादकी ही हैं क्योंकि बौद्धकालके पहिले देवदेवियोंकी मूर्ति बनाकर पूजा करनेकी प्रथा का पता नहीं चलता, फिर भी इनसे गणेशके विकासको समझनेमें सहायता मिल सकती थी। परन्तु आजकल पुस्तक छापनेके लिए कागजका मिलना विकट समस्या हो गया है, इसलिए यथाशक्य लाघवसे काम लिया गया। कई मूर्तियाँ विदेशी संग्रहालयोंमें हैं। लड़ाईके कारण उनके चित्र छापनेकी अनुमति लेना सम्भव नहीं था। पुस्तकको जल्दी निकालनेका विशेष कारण है। इधर थोड़े दिन हुए मैंने 'ब्राह्मणसावधान' शीर्षक देकर साप्ताहिक आजमें एक लेखमाला निकाली। उसमें गणेशपूजाको वेदसे अप्रमाणित लिखा गया। इसपर ब्राह्मण समाजका एक वर्ग रुष्ट हो उठा। यह मैं खूब जानता हूँ कि उनको स्वयं इस बातका ज्ञान नहीं है कि गणेशपूजाका आधार क्या है, न कभी वह पुराणोंको पढ़ते हैं, न वेदार्थपर मनन करते हैं। लकीरको पकड़े रहना ही ऐसे लोगोंके लिए धर्म्म है। अस्तु, हिन्दू जनताके सामने गणेशजीका सच्चा स्वरूप रखनेके लिए पुस्तक जल्दी प्रकाशित हो रही है। ऐसा माननेका कोई कारण नहीं है कि जो जिज्ञासा मुझको हुई थी वह दूसरे बहुतसे लोगोंके मनमें भी न उठी होगी।

गणेशजीकी पूजा आज करोड़ों हिन्दुओंके घर होती है, इसलिए उनके सम्बन्धमें विचार करते समय धार्मिक आवेश-विद्वेषका जागरित हो उठना स्वाभाविक है परन्तु मेरा उद्देश्य धार्म्मिक नहीं है। मुझे गणेशजीकी पूजासे कोई विशेष चिढ़ नहीं है और न किसी सम्प्रदायविशेषके मतोंका खण्डनमण्डन करना अभीष्ट है। उनका चरित भारतके सांस्कृतिक जीवनकी दृष्टिसे तो महत्व रखता ही है, मानव जातिके धार्म्मिक इतिहासमें भी अपूर्व वस्तु है। ऐसे असाधारण व्यक्तित्वकी ओर धर्म्म, इतिहास, समाजशास्त्र और मनोविज्ञानके विद्यार्थियोंका ध्यान जाना चाहिये। मैंने इसी भावनासे इस पुस्तककी रचना की है।

गणेशजीके विग्रहको भारतीय संस्कृतिसे द्वेष रखनेवाले और उसके नासमझ आलोचक जिस दृष्टिसे देखते हैं उसका परिचय बेवर्ली निकल्सकी 'वर्डिक्ट आन इण्डिया'से मिलता है। निकल्सकी सम्मतिका कोई मूल्य और महत्व नहीं है। देशविदेशमें सर्वत्र उसकी निन्दा हुई है और सभी निष्पक्ष विचारकोंने यह कहा है कि उसकी पुस्तक भारत और हिन्दुत्वके विरोधमें मिथ्या प्रचारके उद्देश्यसे लिखी गयी है। पर जिन बातोंको वह कहता है उनको ईसाई मिशनरी और कुछ दूसरे लोग भी बहुत दिनोंसे कहते आ रहे हैं। इस प्रचारका प्रभाव तो पड़ता ही है। निकल्सने लिखा है कि एक ओर तो ईसाई धर्म्मका प्रतीक ईसाकी मूर्ति है, दूसरी ओर हिन्दू धर्म्मका प्रतीक गणेशकी प्रतिमा है। ईसाका सौम्य शरीर उस त्याग, परार्थ-चिन्तन, उदारताका द्योतक है जो ईसाई धर्म्मका लक्षण है; गणेशका बेडौल, डरावना, पशुमुख शरीर हिन्दू धर्म्मकी पाशवता, नीचता, विषयपरताकी पुकार पुकार कर घोषणा कर रहा है। मैं फिर कहता हूँ कि निकल्सका कोई महत्व नहीं है परन्तु हमको यह तो जानना ही चाहिये कि हम दूसरोंकी आँखोंमें कैसे लगते हैं। परायोंके बुरा कहनेसे कोई चीज बुरी नहीं हो जाती परन्तु यह तो होना ही चाहिये कि हम अपनी चीज़ोंके स्वरूपको जान लें और यदि उनके प्रतीयमान भद्देपनके भीतर कोई रहस्य हो तो उसको समझ लें।

गणेशजी आर्य्योंकी देवपारषत्में चाहे जहाँसे आ मिले हों पर अब तो वह सर्वथा हमारे हो गये हैं। उनके अनार्य्य मूलके ऊपर आर्य्य संस्कारोंका इतना गम्भीर वेष्टन पड़ गया है और पिछले दो सहस्र वर्षोंमें आर्य्य संस्कृतिके विकास-में उन्होंने ऐसा भाग लिया है कि अब उनको पराया नहीं माना जा सकता। उनके स्वभावकी परिशुद्धि हमारे विद्वानोंकी बुद्धिमत्ताका चमत्कारिक उदाहरण है। उनकी दिग्विजय यात्रा भारतीय संस्कृतिकी विजययात्रा थी। हमको उनपर गर्व है।

फिर भी यह बात विचारणीय है कि गणेशजी किस तत्वके प्रतीक हैं और उस तत्वका व्यंजन किसी अन्य प्रकार सम्भव है या नहीं। यदि विदेशी आक्रमणकारियोंसे संघर्षमें पड़कर आर्य्य संस्कृति अपनी प्रगतिशीलता खो न बैठती तो मेरा विश्वास है कि गणेशजीके शरीरका और विकास होता और लम्बोदर होनेके स्थानमें आज वह हमको योगानुकूल कृशोदर शरीरमें देख पड़ते।

अध्यायोंके शीर्षकोंमें कहीं गणपति, कहीं विनायक, कहीं गणेश, शब्दसे काम लिया गया है। इसका कारण तत्तत् अध्यायको देखनेसे ही स्पष्ट हो जायगा।

पुस्तक लिखनेमें यों तो मैं बीचबीचमें कई मित्रोंसे परामर्श लेता रहा हूँ परन्तु बम्बईके प्रिंस आव वेल्स म्यूज़ियमके कलाविभागके क्योरेटर डाः मोतीचन्दने समय समयपर जो सुझाव दिये हैं उनके लिए मैं उनका विशेष रूपसे ऋणी हूँ। त्रावणकोर राज्यने मुझे रावकी एलिमेण्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफीसे चित्र उद्धृत करने और नेदरलैण्ड्ज सर्कारके कांसल-जनरल श्रीमेरेंसने डच उपनिवेशोंके सरकारी संग्रहालयोंमें रक्षित मूर्तियोंके चित्र देनेकी अनुमति प्रदान की है। कई चित्रोंका संग्रह भारत कला-भवन, काशी, के अध्यक्ष राय कृष्णदास तथा प्रयागके म्युनिसिपल म्यूज़ियमके संस्थापक रा० ब० पंडित ब्रजमोहन व्यासके बहुमूल्य परामर्श और साहाय्यके बिना हो ही नहीं सकता था। मैं इन सब उपकर्ताओंकी महती कृपाके लिए कृतज्ञ हूँ। मद्रासके गवर्न्मेण्ट म्यूज़ियमके सुपरिण्टेण्डेण्ट और लाहौरके सेण्ट्रल म्यूज़ियमके सुपरिण्टेण्डेण्टके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करना भी मेरा कर्तव्य है। जैन धर्म्मके संबन्धमें सामग्री मुझको श्री कैलाशचन्द्र शास्त्रीकी कृपासे प्राप्त हुई है। उनका भी आभारी हूँ।

जालिपा देवी, काशी
२६ मीन, २०००

सम्पूर्णानन्द

चित्रोंकी परिचयात्मक सूची

आरम्भमें दिया हुआ रंगीन चित्र स्वर्गीय उस्ताद रामप्रसादका बनाया हुआ है। इसका ब्लाक श्रीगीताधर्म्म प्रेसकी कृपासे प्राप्त हुआ है।

फलक १—चार गण (विनायक)—भूमरामें पायी गयी प्रस्तर मूर्तियाँ, इस समय प्रयागके म्युनिसिपल म्यूज़ियममें हैं।

रा० ब० पं० ब्रजमोहन व्यासकी कृपासे

फलक २—गणपति—भूमरामें पायी गयी प्रस्तर मूर्ति, इस समय प्रयागके म्युनिसिपल म्यूज़ियममें है।

रा० ब० पं० ब्रजमोहन व्यासकी कृपासे

फलक ३—ऊपर—मातृकाओंके साथ गणेश—भूमरामें पाया गया करगहना, इस समय प्रयागके म्युनिसिपल म्यूज़ियममें है।

रा० ब० पं० ब्रजमोहन व्यासकी कृपासे

नीचे—गणेश—अमरावतीमें पाया गया करगहना, इस समय मद्रास म्यूज़ियममें है।

मद्रास म्यूज़ियमके क्योरेटरकी कृपासे

फलक ४—ऊपर—उच्छिष्ट गणपति-नञ्जनगोडुमें मूर्ति

त्रावणकोर राजकी कृपासे

नीचे—(दाहिनी ओर)—षोडशबाहु गणपति—काशीके पास पायी गयी धातुकी मूर्ति, इस समय काशीके कला-भवनमें है।

राय कृष्णदासकी कृपासे

(बाईं ओर) पञ्चमुख गणेश—प्रस्तर मूर्ति, काशीमें श्रीविश्वनाथजीके मंदिरके पास एक मंदिरमें प्रतिष्ठित है।

मंदिरके अधिकारीकी कृपासे

फलक ५—दाहिनी ओर—नृत्य गणपति-काशीके पास पायी गयी प्रस्तर मूर्ति, इस समय काशीके कलाभवनमें है।

राय कृष्णदासकी कृपासे

बाईं ओर—हेरम्ब गणपति—नेगापटमके नीलायताक्षियम्मन मन्दिरमें मूर्ति।

त्रावणकोर राजकी कृपासे

फलक ६—दाहिनी ओर—गणेश—जावा द्वीपके दिएंग स्थानमें पायी गयी प्रस्तर मूर्ति, इस समय वहीं सुरक्षित है।

नेदरलैण्ड्ज़ ईस्ट इण्डीज़ सर्कारके भारत-स्थित कांसल-जनरलकी कृपासे

बाईं ओर—गणेश, आतिवाहिक पुरुषके रूपमें, बालि द्वीपमें पायी गयी प्रस्तर मूर्ति।

नेदरलैण्ड्ज़ ईस्ट इण्डीज़ सर्कारके भारत-स्थित कांसल-जनरलकी कृपासे

फलक ७—ऊपर—शिवशक्ति युक्त हुविष्कका सिक्का, इस समय लाहौर म्यूज़ियममें है।

लाहौर म्यूज़ियमके क्यूरेटरकी कृपासे

नीचे—काँगि-तेन।

सुश्री ऐलिस गेटीकी पुस्तकसे लिया गया।

फलक ८—गणेशजीके आयुध—रावके हिन्दू आइकोनोग्राफ़ीके आधारपर।

त्रावणकोर राजकी कृपासे

बाहरी मुखपृष्ठपर दिया गया चित्र पृ० १२ पर अवतरित ध्यानके अनुसार बनाया गया है।

विषयसूची

———

पहिला अध्याय

श्रुतिमें गणपति

हिन्दूमात्रके लिए वेद श्रुति, अपौरुषेय, स्वतः प्रमाण है। धर्म्म और अध्यात्म ज्ञानके विषयमें वेद अन्तिम प्रमाण है। जिसका अस्तित्व वेदने जिस रूपमें स्वीकार किया है उसको उसी रूपसे मानना धर्म्मनिष्ठ हिन्दूके लिए अनिवार्य्य कर्तव्य हो जाता है।

कुछ लोग केवल संहिता भागको वेद मानते हैं परन्तु हम 'मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयं' की पुरानी पद्धतिको ही स्वीकार करते हैं जिसके अनुसार ब्राह्मण अर्थात् आरण्यक और उपनिषद् भी वेदके अन्तर्गत हैं।

गणेशजीका एक नाम गणपति* है। यह शब्द वेदके संहिता भागमें मिलता है। इसका पहिला प्रयोग ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलके तेइसवें सूक्तके पहिले मन्त्रमें हुआ है :—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम्॥

इस मन्त्रकी द्वितीय पंक्तिमें स्पष्ट ही ब्रह्मणस्पतिको सम्बोधित किया गया है, अतः प्रथम पंक्तिका गणपति शब्द उन्हींके लिए प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मणस्पतिका अर्थ है ब्रह्मोंका पति। सायणके अनुसार ब्रह्मका अर्थ मन्त्र है, अतः ब्रह्मणस्पतिका अर्थ मन्त्रोंका स्वामी हुआ। यह उपाधि बृहस्पतिको दी जाती है। ब्रह्मणस्पतिको गणोंका गणपति कहा गया है। सायणने भाष्यमें इसका अर्थ किया है देवादि गणानां संबंधि गणपतिः, अर्थात् देवादि गणोंसे सम्बन्ध रखनेवाला गणपति, देवोंके गणोंका स्वामी। थोड़ेमें, मन्त्र ब्रह्मणस्पति, ब्रह्मों (अर्थात् मन्त्रों) के ज्येष्ठराजसे जो देवगणोंके गणपति और कवियों (ऋषियों, ब्रह्मज्ञानियों) में कवि (ज्ञातृतम) हैं, यह प्रार्थना करता है कि हमारी स्तुतियोंको सुनकर इस यज्ञस्थलमें विराजिये।

सायणके इस मतकी कि यह मन्त्र ब्रह्मणस्पतिपरक है दूसरी जगहसे पुष्टि होती है। ऐतरेय ब्राह्मणके, जो स्वयं श्रुतिके अन्तर्गत है, चतुर्थाध्यायके चतुर्थखण्डके आरम्भमें उपर्युक्त ऋक्के विषयमें स्पष्ट कहा है "गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे इति ब्राह्मणस्पत्य" अर्थात् गणानान्त्वा गणपति हवामहे वाला मन्त्र ब्राह्मणस्पत्य—ब्राह्मणस्पतिसे सम्बन्ध रखनेवाला—है।

शुक्ल यजुर्वेदके सोलहवें अध्यायके पचीसवें मन्त्रमें भी गणपति शब्द आता है : नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः—गणों को और आप गणपतियोंको प्रणाम है। महीधर अपने भाष्यमें लिखते हैं : देवानुचरा भूतविशेषा गणाः, गणानां पालकाः गणपतयः—देवोंके अनुचर भूतविशेष गण होते हैं। उनके पालक गणपति कहलाते हैं। यहाँ रुद्रके गणोंकी ओर सङ्केत तो हो सकता है पर यह ध्यान देनेकी बात है कि गणपति शब्द बहुवचनमें आया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी दृष्टिमें कोई एक गणपति नामधारी देव नहीं है वरन् देवोंके अनुचरोंके कई नायक हैं। वह उन सबको प्रणाम कर रहा है। प्रणाम इसलिए किया जा रहा है कि यह सब रुद्ररूप हैं परन्तु इतनेसे ही इन गणों या गणपतियोंकी महत्ता प्रदर्शित नहीं होती क्योंकि इस अध्यायमें कुम्भकारों, शस्त्रधारियों, सभाओं, चोरों, कुत्तों, घोड़ों, थोड़ेमें समस्त जगत्को रुद्ररूप मानकर प्रणाम किया गया है।

गणपतिका तीसरा उल्लेख भी यजुर्वेदमें है। शुक्ल यजुर्वेदके तेइसवें अध्यायका उन्नीसवाँ मन्त्र इस प्रकार है:

"गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।"

ऋग्वेदके ऊपर दिये हुए मंत्रसे इसका जो थोड़ासा शब्दसाम्य है वह देखनेसे ही प्रकट हो जाता है।

---

*नामोंकी बड़ी सूचीके लिए परिशिष्ट (क) देखिये।

यह मन्त्र अश्वमेधके प्रसङ्गमें आता है। यजमानकी पत्नी, राजमहिषी, मरे हुए घोड़ेकी परिक्रमा करके उसके समीप लेट जाती है। इसी अवसरपर वह इस मन्त्रको पढ़ती है। इसमें अश्वको सम्बोधित किया गया है, इसलिए यह महीधरके शब्दोंमें 'अश्वदेवत्यम्' है—इसकी देवता अश्व है। उवट और महीधर दोनों भाष्यकारोंने इसका यह अर्थ किया है: हे गणोंके गणपति अर्थात् स्त्रीगणके मध्यमें पालक, गणके स्वामी; प्रियोंके प्रियपति अर्थात् वल्लभोंके बीचमें प्रियके पालक; निधियोंके निधिपति अर्थात् सुखनिधियोंके पालक; हम तुम्हारा आह्वान करते हैं; हे वसुरूप अश्व, तुम हमारे पति हो; गर्भ धारण करनेवाले रेतको मैं खींच कर छोड़ती हूँ, तुम भी गर्भधारण करनेवाले रेत (वीर्य्य) को खींच कर छोड़ो।

इस मन्त्र का हम लोगोंके यहाँ गणेश जी की पूजामें पाठ होता है परन्तु बहुत कम लोगोंका ध्यान इसके अर्थकी ओर गया होगा। ऊपर जो अर्थ भाष्यकारोंके मतके अनुसार दिया गया है उसको देखकर आश्चर्य्य होता है। परन्तु दूसरा अर्थ करना सम्भव नहीं है। अश्वमेध यज्ञके अन्तर्गत एक कर्म्म यह भी है। इसके आगे जो कुछ होता है वह और भी विचित्र है। महिषीको उस समय जो कृत्य करना होता था वह आज कल हमको अश्लील प्रतीत होता है। आजसे पहिलेके लोगोंको भी इनमें अश्लीलता प्रतीत होती रही होगी। इस प्रसङ्गमें दस मन्त्र ऐसे हैं जिनमें महिषी, पुरोहित तथा कुछ अन्य स्त्री पुरुषोंमें बात-चीत होती है। उसको विवश होकर भाष्यकारोंने अश्लील भाषण कहा है।

इस प्रकार के अश्लील कर्म्म और अश्लील भाषणसे अपूर्वकी, पुण्यकी, उपलब्धि कैसे होती है, यह विचारणीय प्रश्न हो सकता है परन्तु यहाँ पर यह शोध अप्रासङ्गिक है।

भाष्यकारोंने जो अर्थ किया है वह कपोलकल्पित नहीं है। कात्यायन श्रौतसूत्रके बीसवें अध्यायमें अश्वमेधयज्ञ करनेकी विधि विस्तारसे दी गयी है। इस अध्यायकी छठवीं कण्डिकाके तेरहवेंसे लेकर सोलहवें सूत्रतक जो क्रम बताया गया है वह इसी व्याख्याका समर्थन करता है।

इस प्रकार यज्ञदेवताओंमें गणेशकी कहीं गणना नहीं है। संहिताओंमें गणेशजीके प्रचलित नामोंमेंसे एक गणपतिको छोड़कर दूसरा कोई नाम नहीं मिलता और यह गणपति शब्द जहाँ कहीं भी आया है वहाँ ऐसा प्रसङ्ग है कि गणेशजीका अर्थ लग ही नहीं सकता। शुक्ल यजुर्वेदका यह मन्त्र लीजियेः—

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि।
उर्वन्तरिक्षं वीहिस्वस्ति गव्यूतिरभयानि कृण्वन्पूष्णा सयुजा सह ॥ (११-१५)

इसकी प्रथम पंक्तिमें अश्वका आवाहन करके उससे कहा है कि तुम यहाँ आवो, तुमको रुद्रका गणपतित्व प्राप्त होगा। दूसरी पंक्तिमें गधे को आहूत किया गया है।

उपनिषदोंमें ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यकका स्थान सबसे ऊँचा है। इनकी प्रामाणिकता सर्वमान्य है। शङ्कराचार्य्यने भी इनका भाष्य करना उचित समझा। इनके बाद कौषीतकि ब्राह्मण और श्वेताश्वतरका स्थान है। शेष उपनिषदोंकी प्रामाणिकता निर्विवाद नहीं है। साधारणतः इनकी संख्या ९६ या १०८ मानी जाती है परन्तु उपनिषद् वाक्यकोषके अनुसार उपनिषद् कहलानेवाली और भी बहुत सी पुस्तकोंका पता मिला है। इनमेंसे अधिकांशकी भाषा, शैली और विषय इस बातके द्योतक हैं कि इनकी रचना प्रधान उपनिषदोंके बहुत पीछे और विशेष विशेष सम्प्रदायोंके मतोंकी पुष्टिके लिए की गयी है।

मुख्य उपनिषदोंमेंसे किसीमें गणेशजीका नाम नहीं मिलता पर इस कमीकी पूर्ति गणपत्युपनिषत् जिसको गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद् भी कहते हैं, कर देता है। इसकी गणना साम्प्रदायिक ढङ्गके गौण उपनिषदोंमें ही की जा सकती है। आरम्भमें अर्वाचीन शैलीका यह मङ्गलाचरण है।

यं नत्वा मुनयः सर्वे, निर्विघ्नं यान्ति तत्पदं।
गणेशोपनिषद्वेद्यं, तद्ब्रह्मैवास्मि सर्वगम् ॥

[जिसका नमन करके सब मुनि लोग निर्विघ्नतासे उस पदको प्राप्त होते हैं जो गणेशोपनिषद्से जाना जा सकता है मैं वही सर्वव्यापी ब्रह्म हूँ ।]

इसमें गणेश, गणपति, महागणपति, एकदन्त, वक्रतुण्ड, दन्ती, लम्बोदर और शिवसुत नाम आये हैं ।

तैत्तिरीय आरण्यकके दसवें प्रपाठकके पहिले अनुवाकमें यह मन्त्र आया है :–

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् ।

इसमें वक्रतुण्डकी जगह महादेव और दन्तिकी जगह रुद्र कर देनेसे प्रसिद्ध रुद्रगायत्री मन्त्र बन जाता है :–

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।

इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि दन्ति (या दन्ती) हमको प्रेरित करें । दन्तिका अर्थ हुआ दाँतवाला । उनका विशेषण है वक्रतुण्ड, टेढ़ी सूँड़वाला । दन्तिमें दाँतोंकी संख्याका निर्देश नहीं है परन्तु यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसीको दिया जा सकता था जिसके दाँतोंमें कोई विशेषता रही हो । ऐसी दशामें स्वभावतः गणेशजीके एकदन्त, एकरदन जैसे नामोंकी ओर ध्यान जाता है और यह अनुमान होता है कि दन्ती गणेशजीका ही नाम है । वक्रतुण्ड नाम इस अनुमानकी पुष्टि करता है ।

यह बात ध्यान देनेकी है कि दन्तीको वक्रतुण्डके साथ साथ तत्पुरुष भी कहा गया है । रुद्रके पाँच मुख्य रूप हैं, ईशान, सद्योजात, अघोर, वामदेव और तत्पुरुष । दन्तिको तत्पुरुष कहना यह बतलाना है कि वह जो कोई भी रहे हों परन्तु रुद्रसे अभिन्न माने जाते थे या यों कह सकते हैं कि रुद्रके ही विग्रह विशेषका नाम दन्ति था । दन्तिपरक मन्त्र और रुद्रगायत्री-वाले मन्त्रकी समता इस बातकी ओर सङ्केत करती है कि जिस समय इस आरण्यकका प्रचार हुआ उस समय वक्रतुण्ड दन्ति उन महादेव रुद्रसे अभिन्न माने जाते थे जो तत्पुरुष नामसे भी पुकारे जाते थे ।

इन अवतरणोंको देखनेसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गणेश और उनकी उपासनाने श्रौतवाङ्मयमें बहुत पीछे स्थान पाया है । संहिताओंमें उनका कहीं उल्लेख नहीं मिलता । श्रुतिमें ३३ देवोंका बारम्बार चर्चा होता है । इन ३३ में इन्द्र और प्रजापतिके सिवाय, ८ वसु, १२ आदित्य और ११ रुद्र हैं । वसुओं, आदित्यों और रुद्रोंके नामोंके विषयमें शास्त्रकारोंमें मत-वैषम्य है । उदाहरणके लिए हम नीचे दो सूचियाँ देते हैं :–

बृहदारण्यक उपनिषत्के अनुसार	विष्णुपुराणके अनुसार
वसु—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, सूर्य्य, द्यौः, चन्द्रमा, नक्षत्र	आपः (जल या वरुण ?), ध्रुव, सोम, धर्म्म, वायु, अग्नि, प्रत्यूष, प्रभास
रुद्र—दस प्राण और आत्मा अथवा दस इन्द्रिय और मन	हर, बहुरूप, त्र्यम्बक,अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व, कपाली
आदित्य—वर्षके बारह महीने	विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशु, भग

विष्णुपुराणमें शक्र अर्थात् इन्द्रकी गणना आदित्योंमें की गयी है इसलिए उसमें इन्द्रकी जगह वषट्कारको जोड़कर तैंतीसकी संख्या पूरी की गयी है । परन्तु किसी भी वैदिक देवसूचीमें गणेशजीका किसी भी नामसे अन्तर्भाव नहीं मिलता । जिन स्थलोंमें गणपति शब्दके आनेसे गणेशका बोध हो सकता था वहाँ हम देखते हैं कि गणेशका अर्थ नहीं लिया जा सकता । तत्तत् प्रसङ्गमें गणेशके लिए स्थान नहीं है और भाष्यकार तथा अन्य प्रामाणिक ग्रन्थ भी यही बतलाते हैं कि वह मन्त्र गणेशविषयक नहीं हैं।

ब्राह्मण और आरण्यकका काल संहिताके पीछे आता है । संहितामें दिये हुए मंत्रोंका विनियोग इन ग्रन्थोंका मुख्य विषय होता है । ऐतरेय ब्राह्मणका सम्बन्ध ऋग्वेदसे है । कुछ लोगों को उसमें विनायककी ओर संकेत देख पड़ता है पर यह संकेत स्पष्ट नहीं है । गणपति नामके विषयमें यह ब्राह्मण स्वयं (१-२१) कहता है कि यह ब्राह्मणस्पति या बृहस्पतिका

वाचक है। तैत्तिरीय आरण्यक कृष्णयजुर्वेदसे सम्बद्ध है। उसमेंसे जो मन्त्र उद्धृत किया गया है वह इतना बतलाता है कि किन्हीं वक्रतुण्ड दन्तीकी उपासना की जाती थी जो तत्पुरुष भी कहलाते थे और सम्भवतः रुद्रसे अभिन्न माने जाते थे। मन्त्रकाल और ब्राह्मणकालमें कितना अन्तर है यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानोंका कहना है कि दोनोंके बीचमें तीन चार सौ वर्षोंके लगभग बीते होंगे। इस विषयमें कोई निर्णय किये बिना भी हमारा काम यहां चल सकता है। हमारे लिए इतना पर्याप्त है कि जिस समय इस आरण्यककी रचना हुई या सङ्कलन किया गया उस समय दन्तीका समावेश उपास्योंमें हो चुका था।

उपनिषदोंका समय भी मन्त्रकालके पीछे आता है। मुख्य उपनिषदोंमें बृहदारण्यक और छान्दोग्य बहुत बड़े हैं। बृहदारण्यकमें प्रधानतः याज्ञवल्क्यने विदेहके दर्बारमें अध्यात्मका प्रवचन किया है। विदेहका राज्य ब्रह्मावर्तसे, जहाँ ऋषियोंने पहिले पहिले मन्त्रोंका दर्शन किया था, बहुत दूर था। शतपथ ब्राह्मणमें बतलाया गया है कि उस प्रदेशमें माठव विदेघ नामका राजा सबसे पहिले वैदिक अग्नि ले गया। आर्य्योंको सप्तसिन्धवसे आकर यहां बसनेमें सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। इस पुस्तकमें पारीक्षितों, परीक्षित वंशी नरेशों,का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि यह उपनिषद् महाभारत युद्धके पीछेका है। छान्दोग्य उपनिषद्में भी सप्तसिन्धवके बाहरके कई नरेशोंके नाम आये हैं। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि यह बड़े उपनिषद् भी प्रायः संहिताकालके पीछे सम्पादित हुए हैं। मुख्य उपनिषदोंमेंसे ईश तो शुक्ल यजुर्वेदकी संहिताका अंग है, शेष आरण्यकोंमें अन्तर्भूत हैं। गौण उपनिषद् न तो संहितामें मिलते हैं, न सर्वसम्मत आरण्यकोंमें। उनकी भाषा भी अर्वाचीन संस्कृत है। अतः उनकी रचना बहुत ही पीछेकी है। ऐसे ही एक उपनिषद्में गणेशका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। यदि इस उपनिषत् को श्रुति मान भी लिया जाय तब भी इसके आधार पर गणेशोपासनाकी प्राचीनता प्रमाणित नहीं होती। इसमें गणेशका शिवसुत कहलाना यह दिखलाता है कि अब वक्रतुण्ड दन्ती शिवसे अभिन्न होनेके स्थानमें उनसे पृथक् माने जाते थे।

यह बात सहसा नहीं हुई होगी। किसी नये उपास्यको वैदिक देवोंकी पंक्तिमें लाकर बैठा देना सुकर न था। प्राचीन उपास्य रुद्रको नये नामोंसे पुकारना भी तभी सम्भव हो सकता था जब इन नामोंसे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाएँ और आख्यायिकाएँ लोकमें विस्तार और प्रसिद्धि पा चुकी हों। एक और बात विचारणीय है। तैत्तिरीय आरण्यकके जिस अंशमें दन्ती-विषयक मन्त्र आया है उसे नारायणोपनिषत् कहते हैं। सायणने उसको खिलकाण्ड माना है। इसमें जो मन्त्र पाये जाते हैं वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलते, एक मन्त्र गरुड़के सम्बन्धमें है, एक दुर्गा या दुर्गिके, एक नन्दीके। इनमेंसे कोई भी यज्ञदेवता नहीं है। विवश होकर विद्वानोंको कहना पड़ा है 'इत ऊर्ध्वं तेषु तेषु देशेषु श्रुतिपाठा अत्यन्त विलक्षणाः—इसके आगे तत्तत् देशोंमें अत्यन्त विलक्षण श्रुतिपाठ मिलते हैं। अनुमान यह होता है कि तथोक्त मन्त्र पीछेसे बनाकर प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं, क्योंकि संहितामें गरुड़ या दुर्गा, नन्दी या दन्तीके नाम नहीं मिलते।

दूसरा अध्याय

विनायक

गणेशजीका एक नाम विनायक है। विनायकका अर्थ है विशिष्ट नायक। जो विशेषरूपसे नयन करता हो, प्रामुख्यसे नेतृत्व करता हो, वह विशिष्ट नायक कहला सकता है। नायकके लिए ऐसे अनुयायी भी होने चाहिएँ जिनका वह नेता हो। अतः जब हम देवविशेषको विनायक कहते हैं तो यह भी विवक्षित रहता है कि वह किसी प्रकारके समूहका अग्रणी है।

विनायकका लक्षण है विघ्न करना। सुख, समृद्धि, स्वाध्याय, यज्ञ, पूजा जैसी उपादेय वस्तुओं और क्रियाओंमें बाधा डालनेवालों, विघ्नकारियों, के नेताको विनायक कहते हैं। इसीलिए विनायकको विघ्नेश्वर भी कहते हैं। यह विनायक शब्दका आधिदैविक अर्थ है। इस व्याख्यामें यह बात मान ली गयी है कि किसी प्रकारके प्राणिविशेष हैं जो मनुष्यके साथ शत्रुता करते हैं और उसके जीवनको दुःखी तथा उसके अनुष्ठानोंको निष्फल बनानेमें यत्नशील रहते हैं। उनका अग्रणी कोई महाशक्तिशाली परन्तु दुष्ट प्रकृतिका सत्त्व है। इस अपदेवका नाम विनायक है। दूसरे विघ्नकर अपदेव उसके गण हैं। इसके सिवाय आध्यात्मिक व्याख्या भी की जा सकती है। याज्ञवल्क्यस्मृति की टीकामें विश्वरूपाचार्य्य कहते हैं कि विनायकका तात्पर्य्य व्यामोह या प्राकृत अशुभ कर्म्मोंका समुच्चय, प्राकृत अशुभ कर्म्मोंका संस्कार, है जो हमारी स्वेच्छा प्रवृत्तिका विरोध करता है। विरुद्ध क्रियाओंकी ओर नयन करनेके कारण इसको विनायक कहते हैं।

गणेशजीके अर्थमें विनायक शब्दका प्रयोग एकवचनान्त होता है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि गणेशजी एक व्यक्ति हैं। परन्तु विनायक शब्द सदा एक ही व्यक्तिके अर्थमें नहीं आता था। विनायक बहुसंख्यक थे परन्तु थे सब दुष्ट स्वभाववाले। विष्णुभागवतके दशम स्कन्धमें पूतनाके वधकी जो कथा है उसमें डाकिनी, यातुधान, कूष्माण्ड, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक एक साथ गिनाये गये हैं :—

> डाकिन्यो यातुधान्यश्च, कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः।
> भूतप्रेतपिशाचाश्च, यक्षरक्षो विनायकाः॥
> (भागवत, १०-६-२८)

योगदर्शनके 'भुवनज्ञानं सूर्य्येसंयमात्' सूत्रकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने भूर्लोकके नीचेके निवासियोंमें कूष्माण्ड, वेताल, मारीच, भैरव, विनायक और ब्रह्मराक्षसोंको एक साथ गिनाया है। हरिवंशमें 'राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूतानि च विनायकाः' एक ही साथ उल्लिखित हैं।

विनायकों में चार मुख्य हैं। याज्ञवल्क्य स्मृतिके आचाराध्यायमें इनके नाम मित, सम्मित, शालकटङ्कट और कूष्माण्ड-राजपुत्र बताये गये हैं और इनको प्रसन्न करनेका उपाय भी दिया हुआ है। परन्तु इसी स्थलपर एक और बात देख पड़ती है। यद्यपि चार विनायकोंके अलग अलग नाम लिये गये हैं और उनकी शान्ति के लिए युक्ति भी बतायी गयी है परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चारोंके पृथक् अस्तित्वके लिए कोई विशेष आग्रह नहीं है। प्रकरणके आरम्भमें 'विनायकः' एक वचनान्त प्रयोग है और यह कहा गया है कि रुद्र और ब्रह्मा ने विनायक को गणों का अधिपति नियुक्त किया। बीच में एक जगह विनायककी माता अम्बिकाकी पूजा करनेका विधान है। यहाँ भी एक वचनान्त प्रयोग है। अन्तिम श्लोकमें यह बतलाया गया है कि सिद्धिके लिए आदित्य, तिलकस्वामी और महागणपतिकी सदा पूजा करनी चाहिये। इन प्रयोगोंको देखकर ऐसा अनुमान होता है कि जब याज्ञवल्क्य स्मृतिका यह अंश संकलित हुआ उस समय चारो विनायक एक मुख्य विनायकके विग्रह मात्र रह गये थे और यह प्रधान विनायक महागणपतिसे अभिन्न माने जाते थे।

वाराह पुराणमें विनायक की उत्पत्तिके सम्बन्धमें यह कथा दी गयी है:—

तीसरा अध्याय

गजाननका जन्म

जब गणेश और विनायक एक ही व्यक्ति हैं तो फिर पिछले अध्यायमें जो कथा दी गयी है उसको गणेशजन्मकी कथा भी कह सकते हैं। यह बात ठीक है, फिर भी कुछ ऐसी कथाएँ हैं जिनको विशेष रूपसे गणेशके जन्मकी कथा माना जाता है। इनमें भी प्रधान विनायक अर्थात् विघ्नेश्वर रूप विद्यमान है परन्तु दूसरे विनायकोंका चर्चा नहीं है। गणेश का अकेले ही जन्म हुआ है। गणेशके जन्मकी कथा यों तो अन्यत्र भी मिलती है परन्तु विस्तारके साथ शिवपुराण, स्कन्द पुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराणमें दी हुई है। 'कथा दी हुई है' कहना ठीक नहीं है, यों कहना उचित होगा कि कथाएँ दी हुई हैं, क्योंकि सब एक दूसरेसे कुछ न कुछ भिन्न हैं। जिन लोगोंको पुराणोंपर पूर्ण श्रद्धा है वह इस सम्बन्धमें यों समाधान कर लेते हैं कि कल्पभेदसे घटनाभेद होता रहता है। कोई पुराण किसी कल्पकी घटनाका वर्णन करता है, कोई किसी दूसरे की। अस्तु, मैं यहाँ इन कथाओंको थोड़ेमें दे देता हूँ, इससे इनका साम्य और वैषम्य आप ही प्रकट हो जायगा।

शिवपुराणकी रुद्रसंहिताके कुमारखण्डमें लिखा है कि एक बार पार्वतीजीकी नहानेकी इच्छा हुई। वह घरके द्वार पर अपने शरीरके मैलसे एक पुतला बनाकर बैठा गयीं। उसके सपुर्द यह काम था कि कोई भीतर न आने पावे। यह द्वारपाल गणेश थे। उन्होंने स्वयं शङ्करको रोक दिया। इस पर उनसे और शिवके गणोंसे युद्ध हुआ। इस लड़ाईमें विष्णु आदि सभी देव खिंच आये। जब गणेशको कोई न हरा सका तो शङ्करने उनका सिर काट दिया। इतनेमें पार्वती नहाकर बाहर निकलीं। उन्होंने गणेशको मरा देखकर बड़ा क्रोध किया। उनकी ओरसे देवियाँ और मातृकागण आ खड़ी हुईं। इस तुमुल संग्राममें देवोंकी हार हुई। ऐसा प्रतीत हुआ कि अब जगतका संहार करके ही उमाका क्रोध शान्त होगा। विष्णुके बहुत अनुनय विनय करने पर वह इस बात पर मान गयीं कि यदि गणेश जिला दिये जायँ तो लड़ाई बन्दकर दी जायगी। तब कहीं से हाथीका सिर लाकर लगाया गया। गणेश जी उठे और फिरसे शान्ति हुई। तबसे गणेश गजवदन हुए। सब देवोंने उनकी स्तुति की, उनको गणनायकत्व प्रदान हुआ और यह निश्चय हुआ कि सबसे पहिले उनकी पूजा हुआ करेगी।

ब्रह्मवैवर्तपुराणके गणपतिखण्डमें दूसरी ही कथा है। शिवपार्वतीके विवाहके बहुत दिनों बादतक पार्वतीको कोई सन्तान न हुई। तब उन्होंने श्रीकृष्णका व्रत किया। जब बालक गणेशका जन्म हुआ तो शनिके सिवाय और सब देव देवी उसे देखने आये। बहुत आग्रह करनेपर शनि आये भी तो सिर नीचा किये खड़े रहे। पार्वतीके पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि मुझे शाप है कि जिस बालककी ओर देख दूँगा उसका अनिष्ट होगा। पार्वतीने न माना। शनिके सिर उठाते ही बच्चेका सिर कटकर गिर गया। तब विष्णुने एक हाथीका सिर काटकर जोड़ दिया। यह हाथी पुष्पभद्रा नदीके किनारे दक्षिणकी ओर पावँ किये सो रहा था। बालक जी उठा। तबसे उसको गणपतिपद मिला। एक बार कार्तवीर्य्य आदि क्षत्रिय नरेशोंको मारकर परशुरामजी कैलासपर शिवपार्वतीका दर्शन करने आये। द्वारपर गणेशने उनको रोका। बातबातमें झगड़ा बढ़ गया। परशुराम के परशुसे गणेशका एक दाँत टूट गया। तबसे वह एकरदन, एकदन्त हो गये। पार्वतीजीने जो यह देखा तो वह परशुराम को मारनेको उद्यत हुईं। किसी प्रकार विष्णुने बीच-बचाव किया।

स्कन्दपुराणमें तीसरी कथा दी गयी है। उसके अनुसार जब गणेश गर्भ में आठ महीनेके थे तब सिन्दूर नामके दैत्यने गर्भके भीतर प्रवेश करके उनका सिर काट डाला। वह बेसिरके पैदा हुए परन्तु उनको सिन्दूरके कुकृत्यका पूरा ज्ञान था। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने गजासुरको मारकर उसका सिर अपने कन्धे पर बैठा लिया और गजानन बन गये।

लिङ्गपुराण कहता है कि एक बार असुरोंने शङ्करको प्रसन्न करके उनसे ऐसा वर प्राप्त किया कि वह देवोंके लिए अजेय हो गये। तब देवोंकी प्रार्थनापर शिवका एक अंश पार्वतीके गर्भाशयमें प्रवेश कर गया। काल पाकर जो लड़का पैदा हुआ उसका नाम विघ्नेश्वर पड़ा। उसको राक्षसादिके यज्ञादि कामोंमें विघ्न डालनेका काम सौंपा गया।

गणेशजीके सम्बन्धमें सुप्रभेदागममें एक और कथा है। शिवके सोमेश्वर लिंगकी महिमासे बड़े वड़े पातकी भी स्वर्ग पहुँचने लगे। इससे देव गण घवरा उठे। उन्होंने शंकरसे कहा कि इन अनधिकारियोंका स्वर्ग आना रोकिये। महादेवने कहा कि मैं तो कुछ नहीं कर सकता। पार्वतीसे कहो। पार्वतीको देवोंपर दया आयी। उन्होंने विघ्नेश्वरकी सृष्टि करनेका निश्चय किया। उबटनके साथ अपने शरीरके मैल को मिलाकर गङ्गासागर पर पहुँचीं जहाँ मालिनी नामकी गजमुखी राक्षसी रहती थी। वह पार्वतीजीके लाये उस द्रव्य को खागयी। इससे उसे गर्भ रह गया और काल पाकर पाँच सूँड़वाला लड़का पैदा हुआ। शंकरने इस लड़केको अपना पुत्र मान लिया और पाँचों सूँड़ोंको मिलाकर एक कर दिया। यह लड़का गणपति हुआ। साधारणतः लोगोंके पुण्य कार्य्यमें बाधा डालता है, इसलिए विघ्नेश्वर कहलाता है। परन्तु जो लोग इसकी पूजा करते हैं उनके मार्गको निष्कण्टक बना देता है इसलिए विघ्नहर भी है।

ऐसी भी कथा मिलती है कि शिव पार्वती कुछ दिनोंतक वनमें हाथीके रूपमें विहार करते थे। इसीके फल स्वरूप गणेशजी सूँड़के साथ पैदा हुए। यह भी कहा जाता है कि स्वयं शङ्करने क्रोधमें उनका एक दाँत तोड़ डाला था।

पुराणों उपपुराणोंमें इस प्रकारकी वहुत सी कथाएँ मिलती हैं और किसी न किसी रूपमें लोकमें प्रसिद्धि पा गयी हैं। शिवपुराणमें दी हुई आख्यायिकाका अधिक प्रचार है परन्तु उसमें दूसरे आख्यानोंका भी थोड़ा बहुत अंश मिला रहता है। इनके सिवाय वहुत सी ऐसी लौकिक कहानियाँ भी सुनी जाती हैं जिनको किसी प्रचलित पुराणमें आधार नहीं मिलता।

जो कथाएँ इस अध्यायमें दी गयी हैं उनको दूसरे अध्यायमें दी हुई विनायकोत्पत्ति आख्यानसे मिलानेसे हमको इतनी बातें प्रायः सबमें मिलती हैं :—

(१) गणेश स्वभावतः विघ्नकर्ता हैं, उनके अनुचर भी लोगोंको छेड़ते रहते हैं।

(२) उनको तुष्ट करनेसे विघ्न दूर हो जाते हैं।

(३) शिवने उनको अपने गणोंका स्वामी बनाया है और अपना पुत्र माना है।

(४) किसी न किसी प्रकार उनको पार्वतीने जन्म दिया है।

(५) आरम्भमें वह गजवदन नहीं थे। किसी न किसी प्रकार कहीं न कहीं से लाकर हाथीका सूँड़ उनके कन्धे पर बैठाया गया। मालिनी राक्षसीवाली कथामें सूँड़के साथ ही उनका जन्म हुआ था परन्तु सूँड़ोंकी संख्या पाँच थी। किसी प्रकार पाँच सूँड़ोंको काट छाँट कर एक किया गया।

(६) उनको किसी न किसी लड़ाई झगड़ेके बाद गणपति पद मिला है।

इन बातों पर हम आगे चलकर विस्तारसे विचार करेंगे।

प्रसङ्गतः यहाँ पर उन गणोंके सम्बन्धमें भी थोड़ा सा विचार कर लेना चाहिये जिनके अधिपतिका पद प्रधान विनायकको दिया गया। एक तो उनके साथ विनायकोंकी अपनी सेना है ही जो, वाराह पुराणके अनुसार, शङ्करकी बड़ी सेनामें मिला ली गयी। सब विनायक गण बना लिये गये। इसके अतिरिक्त भैरव, वेताल, विद्याधर, यक्ष जैसे अपदेव और उपदेव भी रुद्रके अनुचरोंमें हैं। इनमेंसे एक एक प्रकारके बहुसंख्यक व्यक्ति हैं जिनमेंसे कुछ प्रमुखोंके नाम पुराणोंमें इतस्ततः मिल जाते हैं। विनायककी भाँति भैरवकी पूजा भी होती है।

गणका अर्थ है वर्ग, समुदाय। कुछ देवोंके नाम व्यक्तिवाचक हैं, कुछ जातिवाचक नाम हैं। इन्द्र एक ही होते हैं परन्तु वसु जातिवाचक है क्योंकि वसुओंके आठ भेद होते हैं। आदित्य, वसु और रुद्र जातिवाचक नाम हैं, इसलिए इनको गणदेव कहते हैं। वौद्धकालमें तुषित, महाराजिक, आभास्वर जैसे कई नये गणोंके नाम लिये जाने लगे। अस्तु,

विनायक देवोंके इन गणोंके स्वामी नहीं हैं। यह देवगण उनके अधिकारक्षेत्रके बाहर हैं। वह शङ्करके अनुचरोंके स्वामी हैं। यह अनुचर कई वर्गोंमें विभक्त हैं, इनके कई गण हैं, इसलिए इनके सेनानी को गणपति कहते हैं।

शिवके गणोंका वर्णन मत्स्यपुराणके १५३ वें अध्यायमें आया है। कोई व्याघ्रमुख है, कोई हस्तिमुख, कोई ह्रस्व, कोई स्थूल, कोई गोकर्ण, कोई गजकर्ण, कोई पुष्पधारी, कोई सर्पधारी, कोई धुआँ पीनेवाला, कोई लोहू पीनेवाला। महादेवने पार्वतीको बतलाया कि यह गण सारे जगत्में फैले हुए हैं, इनकी संख्याका पार पाना असम्भव है। इनके बल और अन्य गुणोंका वर्णन करना भी सम्भव नहीं है। जो मनुष्य तीर्थसेवन, नियमपालन, तप और ब्रह्मचर्य्यसे शङ्करको तुष्ट करते हैं वह गणेश होकर कैलास पर्वतपर क्रीड़ा करते हैं। इनमेंसे एक गणेशकी ओर पार्वतीजी विशेष रूपसे आकृष्ट हुईं। वह सुन्दर बालककी आकृतिमें था, कमलोंकी माला गलेमें पड़ी थी, गानवाद्य करनेवाले गणोंके पीछे घूम रहा था। उसका नाम वीरक था। पार्वतीने यह इच्छा प्रकट की कि मुझे ऐसा पुत्र हो। शङ्करने कहा कि तुम इसीको पुत्र बना लो। ऐसा ही हुआ। शिवके इन असंख्य गणोंके ऊपर जो गणधर या गणेश हैं उन सबके भी ऊपर जिनको स्थान दिया गया वही हमारे प्रधान विनायक या महागणाधिपति हैं। इनकीही गणेशजीके नामसे पूजा की जाती है। यह ठीक ठीक नही कहा जा सकता कि जिस वीरक गणेशका नाम इस आख्यानमें आया है वही किसी प्रकार शरीरान्तरमें गणपति बन गया परन्तु ऐसा अनुमान करना असङ्गत न होगा।

फलक १ और २ में गणपति तथा चार गणोंके चित्र दिये हुए हैं। इस प्रकारकी प्रायः १५० मूर्तियाँ मध्यभारतके भूमरा स्थानसे मिली हैं। इस समय इन्हें प्रयागके म्यूनिसिपल म्यूजियममें देखा जा सकता है।

गण शब्द व्याकरणकी परिभाषामें भी आता है। एकही प्रकारसे शब्द एक गणके अन्तर्गत माने जाते हैं। जैसे, वह सब धातु जिनमें भू धातुके समान कालादिके द्योतक तिङन्त प्रत्यय लगते हैं भ्वादिगणमें रक्खे जाते हैं। कुछ लोगोंका कहना है कि गणपतिका गण शब्दके इस अर्थसे भी सम्बन्ध है।

एक ब्राह्मणीके पेटसे गण नामका असुर पैदा हुआ। उसने पृथिवीपर बहुत उत्पात किया। अन्तमें महामुनि कपिलके अनुरोधसे गणेशजीने उसे मारा। यह उनके विघ्नविनाशक होनेका उदाहरण है।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शङ्करके सब गणोंके ऊपर विनायकका आधिपत्य नहीं है। वीरशैव सम्प्रदायके अनुसार, जिसे बोलचालमें लोग लिङ्गायत भी कहा करते हैं, शङ्करके पाँच मुखोंसे सृष्टिके आदिकालमें पाँच शिवकल्प योगीश्वर उत्पन्न हुए और फिर इन महापुरुषोंका संसारी जीवोंके कल्याणके उद्देश्यसे पृथिवीपर अवतार हुआ। माताके गर्भसे जन्म न लेकर यह एक एक शिवलिङ्गसे निकले। इस प्रकार सोमेश्वर लिंगसे रेणुकाचार्य, वटवृक्षसिद्धेश्वर लिङ्गसे दारुकाचार्य्य, रामनाथ लिङ्गसे एकोरामाराध्य, मल्लिकार्जुन लिङ्गसे पण्डिताराध्य और विश्वनाथलिङ्गसे विश्वाराध्य आविर्भूत हुए। इनको भी गण ही माना जाता है। सिद्धान्तशिखामणि इस सम्प्रदायकी प्रामाणिक पुस्तकोंमें है। उसमें वह उपदेश ग्रथित हैं जो अगस्त्य मुनिको रेणुकाचार्य्यसे प्राप्त हुए। अगस्त्यने आचार्य्यके लिए स्थान स्थानपर गणनाथ, गणनायक जैसे सम्बोधनोंका प्रयोग किया है। पुस्तकके आरम्भमें लिखा है कि शङ्करने रेणुक गणनायक को शिवाद्वैत विद्याको स्थापित करनेके लिए भूर्लोकमें भेजा।

यह स्पष्ट है कि ऐसे महासिद्ध गण उन गणोंसे पृथक् हैं जो विनायकके वशवर्ती हैं।

चौथा अध्याय

गणपतिका स्मार्त पूजन

गणपति पूजनके एक विधानकी ओर विनायकवाले अध्यायमे संकेत किया जा चुका है। वह पूजा मुख्यतया बाधा शान्तिके लिए की जाती है। इसके अतिरिक्त गृहस्थोंके यहाँ सभी मंगलकृत्योंमें गणेशजीकी पूजा होती है। इन पूजाओंमें बहुतसे स्तुतिपरक श्लोक पढ़े जाते हैं, जिनमेंसे कई ऐसे हैं जो पुराणोंमें पाये जाते हैं। शिवपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणेशसंहिता आदिमें बहुतसे स्तोत्र दिए हुए हैं। ऐसे स्तोत्रोंका स्वरूप इस छोटेसे स्तोत्रसे देखा जा सकता है जिसे विनायकके प्रति देवगणने पढ़ा था। यह वाराहपुराणमें मिलता है :—

नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक।
विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम ॥
नमोऽस्तुते विघ्नकर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल।
नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित ॥
सर्वदेवनमस्कारादविघ्नं कुरु सर्वदा।

ऐसे पौराणिक श्लोकोंके सिवाय यजुर्वेदके अश्वमेधाध्यायका यह मन्त्र भी गणेश पूजामें पढ़ा जाता है।

गणानान्त्वा गणपति ँ हवामहे प्रियाणान्त्वा प्रियपति ँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ँ हवामहेव्वसो मम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥

इस मन्त्रकी व्याख्या पहिले अध्यायमें की जा चुकी है। इसको भाष्यकार और श्रौतसूत्रकार अश्वदैवत मानते हैं, प्रसंग भी वहाँ अश्वका है। गणपति शब्दको छोड़कर इसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे इसका संबंध गणेशके साथ जोड़ा जा सके। यदि इसको गणेशका मन्त्र माना जायगा तो उत्तरार्द्ध 'आहमजानिगर्भधमात्वमजासि गर्भधम्' निरर्थक हो जायगा। फिर भी इसका पाठ घर-घरमें गणेशके लिये किया जाता है। मीमांसाके विद्वानोंका मत है कि एक ही मन्त्र प्रस्थान-भेदसे कई देवताओंके लिए प्रयुक्त हो सकता है। इसी आधारपर यह मन्त्र गणेशके लिए प्रयुक्त होता है। मुझको मीमांसाका यह सिद्धान्त अभिमत है परन्तु कोई भी सिद्धान्त हो उसका उपयोग बुद्धिपूर्वक ही होना चाहिये। यदि श्रुतिने स्वयं कहीं स्पष्ट आदेश किया हो तब तो तर्कके लिए स्थान नहीं रहता, परन्तु गणेशजीके लिए यह बात लागू नहीं है। श्रुति न कहीं उनका उल्लेख करती है न कहीं यह कहती है कि गणानान्त्वा मन्त्र गणेशदैवत भी है। जिस समय वैदिक यज्ञयाग होते थे उस समयके श्रौतसूत्र जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ भी ऐसा नहीं कहते। इस प्रकारके प्रयोगके लिए पीछेकी लिखी पुस्तकोंमें ही वचन मिलते हैं, परन्तु इन वचनोंकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद है। यदि यह कहा जाय कि वेदका अमुक मन्त्र ईसादैवत है तो पहिले ही यह प्रश्न उठेगा कि ईसाका कहीं वेदमें स्पष्ट उल्लेख है या नहीं। यदि नहीं है तो फिर मन्त्रको ईसापरक मानना सम्भव न होगा। फिर यह भी प्रश्न उठता है कि उस मन्त्रमें कोई भी ऐसी बात है जो ईसापर घट सकती हो। यदि यह बात भी नहीं मिलती तब मत्रके साथ ईसाका सम्वन्ध जोड़ना सरासर अन्याय होगा। इसी तर्कसे यह कहा जा सकता है कि गणानान्त्वा मत्रका गणेशसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

गणेशकी पूजामें तिलका विशेष स्थान है। माघमें जो गणेश चतुर्थी पड़ती है उसको तिलचतुर्थी भी कहते हैं। उस दिन गणेशकी पूजा करनेका माहात्म्य काशीखण्डमें दिए इस शिववाक्यसे जाना जा सकता है।

माघशुक्ल चतुर्थ्यां तु, नक्तव्रतपरायणाः।
ये त्वां ढुंढेऽर्चयिष्यन्ति, तेऽर्च्याः सुरसुरद्रुहाम् ॥

हे ढुण्ढि (गणेश), जो लोग माघशुक्ल चतुर्थीको रातमें व्रतपरायण रहकर तुम्हारी पूजा करते हैं उनकी पूजा देवगण करते हैं ।

यों तो पञ्चदेवोपासक होनेके नाते सभी स्मार्त हिन्दू गणेशकी यदा-कदा पूजा करते रहते हैं परन्तु आजसे कई सौ वर्ष पहिले गणेशके उपासकोंका एक पृथक् सम्प्रदाय बन गया था । यह लोग गाणपत्य कहलाते थे । श्रुतिके अनुसार ब्राह्मणोंके पांच उपास्य हैं :—अग्नि, विष्णु, सविता, बृहस्पति और सरस्वती । गाणपत्योंका कहना था कि यहाँ बृहस्पति शब्द गणेशके लिए ही प्रयुक्त हुआ है । शङ्कराचार्य्यके समयमें, जिसको लगभग १२००–१३०० वर्ष हुए, इनके होनेका प्रमाण मिलता है । शङ्कर दिग्विजयको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य्यसे इन लोगोंका शास्त्रार्थ भी हुआ था । अब इस सम्प्रदायका लोप हो गया है । यह लोग गणेशको इस चराचर जगत्का निमित्त और उपादान कारण स्वीकार करते थे और उनकी उपासनाको ही भोग और मोक्षका साधन मानते थे । उनके इस मतका दिग्दर्शन गणपत्युपनिषद्के इन वाक्योंमें होता है :—त्वमेव केवलं कर्तासि । त्वमेव केवलं धर्तासि । त्वमेव केवलं हर्तासि । त्वमेव केवलं सर्वं खल्विदं ब्रह्मासि । त्वं साक्षादात्मासि नित्यं । ···सर्वं जगदिदं त्वत्तो जायते । सर्वं जगदिदं त्वत्तस्तिष्ठति । सर्वं जगदिदं त्वयि लयमेष्यति । ···त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रुद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुस्त्वं सूर्य्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवःसुवरोम् ।' केवल तुमही कर्ता हो, केवल तुमही धर्ता हो, केवल तुमही हर्ता हो, केवल तुमही इस सम्पूर्ण जगत्से अभिन्न ब्रह्म हो । तुम नित्य साक्षात् आत्मा हो । यह सम्पूर्ण जगत् तुमसे उत्पन्न होता है, तुमसे स्थित है, तुममें लय होगा । तुम ब्रह्मा, तुम विष्णु, तुम रुद्र, तुम इन्द्र, तुम अग्नि, तुम वायु, तुम सूर्य्य, तुम चन्द्रमा, तुम ब्रह्म, तुम भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक, तुम ओङ्कारस्वरूप हो ।'

'गणपति उपासक इस गणेशगायत्रीका जप करते हैं :–

ॐ गं एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि । तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥

इसके अतिरिक्त और भी कई मन्त्र हैं । जैसे–

नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तेऽस्तु लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्नविनाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमो नमः ।

ऐसा प्रतीत होता है कि गाणपत्योंके छः भेद थे । यह अपने उपास्य देवको क्रमात् महागणाधिपति, कुमारगणपति, हेरम्बसुत, नवनीत, स्वर्ण और सन्तानके नामसे पुकारते गे । इन लुप्त सम्प्रदायोंका विस्तृत वर्णन करना अनावश्यक है ।

गाणपत्य सम्प्रदाय लुप्त हो गया है परन्तु गणेशकी पूजा सारे भारतवर्षमें होती है । महाराष्ट्र प्रान्तमें इसका विशेष समारोह होता है ।

पुराणोंमें तथा गाणपत्य वाङ्मयमें गणेशजीके अनेक ध्यान दिए हुए हैं । इन्हीं ध्यानोंके अनुसार उनकी मूर्तियां बनती हैं । सब ध्यानोंको देनेसे पुस्तकका कलेवर बहुत बढ़ जायगा । इसलिये मैं उदाहरणस्वरूप यहाँ दो एक अवतरण दिये देता हूँ । कुछ अवतरण सातवें अध्यायमें दिये जायँगे–

चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च, कर्तव्योऽत्र गजाननः ।
नागयज्ञोपवीतश्च, शशाङ्ककृत शेखरः ॥
दक्षे दन्तं करे दद्याद्, द्वितीये चाक्षसूत्रकम् ।
तृतीये परशुं दद्यात्, चतुर्थे मोदकं तथा ॥

[गजाननकी मूर्ति चतुर्भुज और त्रिनेत्र बनानी चाहिये । मस्तकपर चन्द्रमा और गलेमें सर्पका जनेऊ होना चाहिये । दहिनी ओरके हाथोंमें दाँत* और रुद्राक्षमाला तथा बाएँ ओरके हाथोंमें परशु और मोदक दिया जाय ।]

---

*गणेशजी अपने टूटे दाँतको बहुधा अपने हाथमें रखते हैं ।

गण्डपाणिगलद्दान पूरलालसमानसान् ।
द्विरेफान् कर्णतालाभ्यां वारयन्तम्मुहुर्मुहुः ॥
कराग्रधृतमाणिक्य कुम्भवक्त्र विनिःसृतैः ।
रत्नवर्षैः प्रीणयन्तम् साधकं मदविह्वलम् ॥
माणिक्य मुकुटोपेतं रत्नाभरणभूषितम् ।

[सूँड़के गण्डस्थलसे टपकते मदके लालची भौंरोंको कानोंके पंखेसे बारम्बार हटाते हुए, मदिराके नशेसे विह्वल, माणिक्य मुकुटसे भूषित, रत्नाभरणोंसे मण्डित, अपने हाथके माणिक्यके घड़ेसे गिरते हुए रत्नोंकी वर्षासे साधकोंको प्रसन्न करते हुए]

सातवें अध्यायमें कुछ और ध्यान दिये जायँगे और वहीं गणेशपूजाकी तंत्रोक्त विधिका भी कुछ दिग्दर्शन कराया जायगा। तन्त्रोंमें ही गणेशकी उपासनाका विस्तार है और उसका आध्यात्मिक महत्त्व देख पड़ता है। उससे गणेशके स्वरूपको समझनेमें भी बहुत सहायता मिलती है। पुराणोंमें गणेशका जो कुछ वर्णन है वह उनकी तान्त्रिक महत्ताकी हल्की छाया सा प्रतीत होता है।

कई ध्यानोंमें गणेशजीको गाढ़श्लेषमें बाँधे हुए पद्महस्ता देवीका वर्णन आता है। वह कहीं कहीं श्यामाङ्गी कही गयी है। इस देवीका एक नाम जयन्ती है। परन्तु जैसा कि हम सातवें अध्यायमें देखेंगे, ऐसा मानना चाहिए कि यह स्त्री विग्रह गाणपत्य शक्तिका–गणेशजीकी शक्तिका–प्रतीक है। एक मत यह है कि यह अणिमादि अष्टसिद्धिका समुच्चय है। एक मत यह भी है कि सातों मातृकाओं अर्थात् ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डाके साथ योगेश्वरीको मिलाकर इस सामूहिक देवताको गणेशके साथ देवीरूपसे दिखलाया जाता है।

गणेशजीका वर्णन करते हुए चूहेको नहीं छोड़ा जा सकता। उनको मूषकवाहन और आखुरथ कहते हैं। जिस प्रकार विष्णु गरुड़ध्वज और शङ्कर वृषध्वज हैं उसीप्रकार गणेश मूषकध्वज हैं। कहा जाता है कि गणेशसे गजमुखासुर नामक दैत्यसे युद्ध हुआ। उसने उनका दाहिना दाँत तोड़ दिया। उन्होंने उस टूटे दाँतसे उसपर ऐसा प्रहार किया कि वह घबराकर चूहा बनकर भागा परन्तु गणेशने उसे पकड़ लिया। तबसे चूहा उनका वाहन बन गया, यद्यपि वह कभी-कभी दूसरी सवारियों पर भी बैठते हैं। हेरम्बसुत गणेशकी मूर्तियाँ सिंहपर सवार मिलती हैं।

चूहेके सम्बन्धमें एक बात विचारणीय है। यजुर्वेदके तीसरे अध्यायका सत्तावनवाँ मन्त्र यह है :–

एषते रुद्रभागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैषते रुद्रभाग आखुस्ते पशुः।

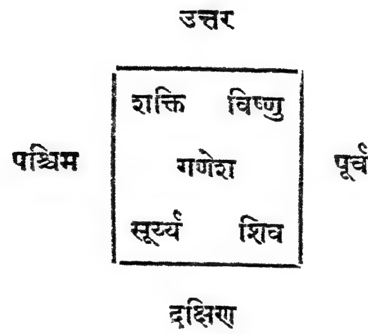
हे रुद्र यह तुम्हारा भाग है। अपनी बहिन अम्बिकाके साथ इसे ग्रहण करो। चूहा तुम्हारा पशु है।

वहाँ प्रसङ्ग यह है कि रुद्रके लिए एक पुरोडाश चूहोंकी खोदी मिट्टीमें डाल दिया जाता है। रुद्र क्रूर देवता हैं, उनकी भगिनी अम्बिका भी क्रूरस्वभावा हैं। वह जरा (बुढ़ापा) आदिको उत्पन्न करके शत्रुका विनाश करती हैं। यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि चूहेको रुद्रका पशु कहा गया है। जो लोग वैदिक वाङ्मयसे परिचित हैं वह जानते हैं कि अम्बिकाको, जो पुराणोंमें रुद्रकी पत्नी हैं, वेदोंमें कई जगह रुद्रकी बहिन कहा गया है।

ऐहिक और आमुष्मिक सभी प्रकारके काम्य कर्म्मोंके आरम्भमें गणेशजीकी पूजा की जाती है, यहाँ तक कि बहुतसे ऐसे कृत्योंमें भी जो श्रौतविधिसे सम्पन्न होते हैं गणपतिपूजनके लिए स्थान निकाल लिया गया है। ऐसा विश्वास है कि गणेशकी पूजासे विघ्नोंकी शान्ति और सिद्धिकी प्राप्ति होगी। इस विश्वासका मूर्त रूप उन चित्रोंमें देख पड़ता है जो मंगल कार्य्योंके अवसरपर उत्तर भारतमें दीवारोंपर बनाये जाते हैं। कभी-कभी ऐसे चित्र पुस्तकोंमें और उत्सवसूचक पत्रादिकोंमें भी दिए जाते हैं। इनमें गणेशजीके दोनों ओर दो स्त्रियाँ चँवर लिए खड़ी रहती हैं। इनको प्रायः ऋद्धि और सिद्धि कहा जाता है। वस्तुतः यह गणेशजीकी सिद्धि और बुद्धि नामकी दोनों पत्नियाँ हैं।

गणेशजी विद्यादाता भी माने जाते हैं। विद्यार्थी लोग इसी उद्देश्यसे उनकी पूजा करते हैं। मैंने देखा है कि परीक्षाके दिनोंमें काशीमें गणेशजीके मन्दिरके प्रति विद्यार्थियोंकी श्रद्धा बहुत बढ़ जाती है और उत्तीर्ण विद्यार्थियोंकी ओरसे लड्डुओंकी भेंट भी खूब चढ़ती है। परन्तु वह विद्यादाता कैसे हुए इसके सम्बन्धमें कोई आख्यान नहीं मिलता। कई मूर्तियों और ध्यानोंमें गणेशजीके एक हाथमें पुस्तक है; कहीं-कहीं लेखनी भी पायी जाती है। यह भी कहा जाता है कि वह अपने टूटे दाँतसे लेखनीका काम लेते हैं। एक विद्वान्का मत है कि गणेशजीका विद्याके साथ जो सम्बन्ध जुड़ गया है उसके मूलमें एक भ्रान्ति है। वह सिद्धिदाता तो हैं ही, क्योंकि ऐसा सभी पुराणोंमें कहा गया है। प्राचीन कालमें वर्णमालाको 'सिद्धम्' कहते थे, सिद्ध शब्दका उच्चारण करके तब अकारादि अक्षरोंका नाम लेते थे। आज भी पुरानी परिपाटीसे चलनेवाली पाठशालाओंमें अक्षरारम्भके समय 'ओनामासीधंग' या धङ् पढ़ा जाता है जो स्पष्ट ही ॐ नाम सिद्धम्का विकृतरूप है। बस काल पाकर यह विश्वास फैल गया कि गणेशजी जो सिद्धिदाता हैं सिद्धम् के अर्थात् विद्याके भी दाता हैं।

*साधारण हिन्दू पञ्चदेवोपासक कहलाता है। उसको विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश और सूर्य्यकी पूजा करनी चाहिये। बीचमें अपने इष्टदेव और चारों कोनोंमें शेष चारों देवोंकी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। गणेशको इष्ट माननेवालेके लिए यह प्रकार है :—



इस उपासनाके लिए यह ध्यान बताया गया है :—

श्वेताङ्गं श्वेतवस्त्रं सितकुसुमगणैः पूजितं श्वेतगन्धैः।
क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुरवरतिलकं रत्नसिंहासनस्थं॥
दोर्भिः पाशाङ्कुशाब्जाभयधरमनिशं चन्द्रमौलिं त्रिनेत्रम्।
ध्यायेच्छान्त्यथमीशं गणपतिममलं श्रीसमेतं प्रसन्नम्॥

[शान्तिके लिए ईश गणपतिका ध्यान करे जो श्वेताङ्ग हैं, श्वेत वस्त्रधारी हैं, श्वेतपुष्पोंसे पूजित हैं, जो देवोंमें श्रेष्ठ हैं, क्षीरसागरमें रत्नसिंहासनपर बैठे हैं, जो चन्द्रमौलि, त्रिनेत्र, प्रसन्न, अमल और श्रीसमेत हैं, जिनके हाथोंमें पाश, अंकुश, कमल और अभय मुद्रा है]।

इस ध्यानके साथ यह जप बताया गया है :—

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः।

यह यजुर्वेदके सोलहवें अध्यायका २५ वाँ मन्त्र है।

पाँचवाँ अध्याय

गणेशजीके कुछ स्मरणीय काम

सिद्धदाता और विघ्नेश्वर होनेके कारण गणेशजीका लोगोंके जीवनसे नित्यप्रतिका सम्बन्ध है। जिसको किसी बड़े विघ्नका सामना करना पड़ जाता है या किसी बड़ी सिद्धिकी प्राप्ति हो जाती है वह उसे यावज्जीवन स्मरण रखता है। इस प्रकार गणेशजी नित्य ही सहस्रों स्मरणीय काम किया करते हैं।

उनके कुछ काम ऐसे हैं जो लोकमें विशेष प्रसिद्धि पा गये हैं। उनके सम्बन्धमें जो आख्यान प्रचलित हैं उनके पीछे कुछ तो पौराणिक आधार है, कुछ जनसमुदायकी इच्छाओं और आशाओंकी छाया है और कुछ प्राकृत मनुष्यकी विनोदप्रिय कल्पनाकी उपज है। उत्तर भारतमें गणेश चतुर्थीके सम्बन्धमें जो कहानी गाँवोंमें कही-सुनी जाती है उसके स्थान भेदसे कई संस्करण हैं परन्तु मूलरूप कुछ इस प्रकारका है। एक निर्धन स्त्री बड़ी श्रद्धासे गणेशजीका पूजन करती थी। चतुर्थीके दिन कहींसे माँग-जाँचकर थोड़ेसे तिल ले आयी। उनका ही एक टूटा-फूटासा लड्डू बनाकर गणेशजीको चढ़ाया और यों ही निराहार लेट रही। गणेशजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसको दर्शन दिया और उस लड्डूसे तृप्त हो गये। कुछ देरके बाद वह उससे बोले कि मैंने इतना खा लिया है कि पेट फटा जाता है, दीर्घशंकाके लिये स्थान बतला। उसने कहा कि महाराज, मेरे पास दूसरा स्थान कहाँ है, मेरे शरीरको ही पवित्र कीजिये। सवेरे उठकर देखा गया तो उसकी सारी झोपड़ी सोने और मणिमाणिकसे भर गयी थी। फिर उसे कभी धनधान्य की कमी न हुई और मरने पर गणेशजीने उसे मुक्ति दी। उसके ऐश्वर्य्यको देखकर उसकी एक पड़ोसिनको बड़ी ईर्षा हुई। यह स्त्री सम्पन्न थी परन्तु स्वभावकी क्रूर थी और कभी दान-धर्म्म नहीं करती थी। इसने भी गणेश चतुर्थीका व्रत किया परन्तु अपने स्वभाविक सूमपनको न छोड़ सकी। रातको उसके यहाँ भी गणेशजी बड़े तोंदवाले मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए। जो कुछ नैवेद्य रक्खा गया था उसे खा पीकर थोड़ी देरमें उन्होंने उससे भी शौचके लिये उपयुक्त स्थान पूछा। उसने कह दिया महाराज, यह घर आपका है। सवेरे उठकर देखा गया तो सारा घर विष्ठासे भरा पड़ा पड़ा था। कहानीमें जुगुप्सात्मक अश्लीलता है पर इसके भीतर यह भाव विदित है कि देवगण बाहरी बातोंसे धोखेमें नहीं आते और गणेशजी दीन-दुखियोंको सदा सहायता करते हैं।

गणेशजीके बड़े भाई कार्त्तिकेय तो देवोंके प्रधान सेनापति हैं ही परन्तु किसी किसी अवसरपर गणेशजी को भी सेनाध्यक्षका काम सँभालना पड़ा है। किसी किसी असुरने ब्रह्माजीसे यह वरदान माँग लिया कि मुझे मनुष्य, यक्ष, देव कोई न मार सके। ऐसोंकी मृत्यु गणेशजीके हाथों हुई क्योंकि वह इनमेंसे किसी भी वर्गमें नही हैं। हम गणासुर गजमुखासुर और गजासुरके उपाख्यान पिछले अध्यायोंमें देख आये हैं।

गणेशजीके एक बहुत बड़े कामका विस्तृत वर्णन स्कन्द पुराणके काशीखण्डमें है। एक समय पृथिवीपर अनावृष्टिके कारण घोर अकाल पड़ा। प्रजा व्याकुल हो उठी। तब ब्रह्माजीने रिपुञ्जय नामके क्षत्रिय कुमारसे जो वनमें उग्र तप कर रहा था पृथिवीका राज्यभार सँभालने को कहा। उन्होंने विश्वास दिलाया कि उसके राजा बनते ही वृष्टि होगी। उसने इस शर्त पर राज्य करना स्वीकार किया कि देवगण पृथिवी छोड़कर अपने लोक को चले जायँ। ब्रह्माजीने यह बात मान ली। तब उसने राज्यभार ग्रहण किया। उसका नाम दिवोदास पड़ा। उसने काशी को अपनी राजधानी बनाया। ऐसा सुन्दर शासन न कभी हुआ था न होगा। देवगण तो चले गये थे, दिवोदास अपने तपके तेजसे सबका काम करता था। प्रजामें न कोई रोगी था न दरिद्र, न किसीकी अकाल मृत्यु होती थी। स्त्री पुरुष सब धर्म्मके आचरणमें निरन्तर रहते थे। और सब देवोंको तो कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ परन्तु शङ्करको काशी छूट जानेसे अपार दुःख हुआ। उनके कैलास इत्यादि अन्य कई धाम हैं परन्तु काशीके बराबर कोई भी प्यारा नहीं है काशी आनेकी कोई युक्ति बैठती न थी। जो कोई गुप्तचर भेजा जाता था उसको काशी इतनी भली लगती थी और दिवोदासके शासनमें इतना सुख मिलता था कि वह यहीं रह जाता था। तब

गणेशजीने इस बातका बीड़ा उठाया कि मैं शिवपार्वतीका काशीमें प्रवेश कराऊँगा। वह ज्योतिषीका रूप धर कर आये। उनकी ख्याति राजा तक पहुँची। वह उनकी योग्यता पर मुग्ध हो गया। उन्होंने उसे बताया कि आजके अठारहवें दिन एक और ब्राह्मण तुमसे मिलेगा, वह जो कुछ कहे करना। उससे तुम्हारा कल्याण होगा। अठारहवें दिन विष्णु ब्राह्मणका रूप धरकर राजासे मिले। उन्होंने उसकी बहुत प्रशंसाकी पर साथमें यह भी कहा कि तुमने शङ्कर को काशीसे बाहर रखकर भारी पाप किया है। इसके प्रायश्चितके लिये लिङ्गव्रत करो। दिवोदासने ऐसा ही किया। एक दिन वह पूजामें लगा हुआ था कि आकाशसे दिव्यविमान उतरा। उसपर शिवके पार्षद बैठे थे। उन्होंने राजाको विमान पर बैठा लिया और वह शिवरूप होकर शिव लोक चला गया। वहाँ वह पराशैवगति को प्राप्त हुआ। उसके चले जाने पर शिवपार्वती काशी आये। इस अवसर पर महादेवने गणेशजीकी भूरि भूरि प्रशंसाकी क्योंकि जो काम कोई नहीं कर सका था उसे उन्होंने कर दिखाया था।

यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्। मयाप्यतीव दुष्प्राप्याम् सप्रसादोऽस्य वै शिशोः ॥
यद्दुष्प्रसाध्यं हि पितु रपित्रिजगतीतले। तत्सूनुना सुसाध्यं स्यादत्रदृष्टान्तता मयि ॥
पुत्रवानहमेवास्मि यच्चमे चिरचिन्तितम्। स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम् ॥

[यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी अतीव दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है वह इस बच्चेका प्रसाद है। त्रिलोकमें जो काम पिताके लिये दुःसाध्य होता है उसे लड़का कर देता है, इसका दृष्टान्त मुझपर मिल रहा है। मैं ही पुत्रवान हूँ क्योंकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया]

लोगोंका विवाह तो हुआ ही करता है परन्तु गणेशजीका विवाह भी उनके स्मरणीय चरितोंमें गिना जा सकता है। जब स्कन्द और गणेश बड़े हुए तो इनके विवाहका प्रश्न छिड़ा। यह निश्चय हुआ कि जो पहिले सात बार पृथिवीकी प्रदक्षिणा, कर ले उसका विवाह पहिले हो। स्कन्दने अपना मोर उठाया। जब एक परिक्रमा पूरी करके लौटे तो देखा गणेशके विवाहका आयोजन हो रहा है। बात यह थी कि गणेशजीने सोचा कि ऐसा स्थूल शरीर, फिर चूहेकी सवारी, भला स्कन्दकी बराबरी कहाँ हो सकेगी। उन्होंने एक युक्ति निकाली। सात बार हरगौरीके चारोंओर घूम आये। शास्त्रकार ऐसा मानते हैं कि माता-पिताकी परिक्रमा करनेसे पृथिवीपरिक्रमाका फल होता है। अतः स्कन्दकी एक परिक्रमा पूरी होनेके पहिले गणेशकी सातों परिक्रमाएँ पूरी हो गयीं और वह विवाह करनेके अधिकारी हो गये। कार्त्तिकेय शास्त्रके वचनको तो काट नहीं सकते थे परन्तु उनको गणेशकी यह चाल अच्छी नहीं लगी। वह इस बातसे भी खिन्न हो गये कि मातापिताने इस छलकृत्यमें गणेशकी भर्त्सना नहींकी। इससे रुष्ट होकर वह तप करनेके लिये क्रौञ्चगिरि चले गये। उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य्यका व्रत ले लिया है। सालभरमें एक दिन मातापिता का दर्शन करने कैलास आते हैं। विश्वकर्म्माकी सिद्धि और बुद्धि नामकी दो लड़कियाँ थीं। उनसे गणेशका विवाह हुआ। सिद्धिसे उनको लक्ष्य और बुद्धिसे लाभ नामका पुत्र हुआ।

महाभारतकी रचनामें व्यासजीकी सहायता करना भी गणेशजीका स्मरणीय काम कहा जा सकता है। कथा यह है कि जब व्यासजीने महाभारत निर्माण करनेका निश्चय किया तो उनको एक सुयोग्य लेखककी खोज हुई। गणेशजीने यह दायित्व अपने ऊपर लिया परन्तु उन्होंने यह शर्त लगायी कि व्यासजी बराबर बोलते जायँ, लेखनीको रुकना न पड़े। व्यासजीने इस शर्तको इस शर्त पर स्वीकार किया कि गणेशजी उन्हीं बातोंको लिखें जो उनकी समझमें आवें। सौ सवा सौ श्लोकोंके बाद व्यासजी एक कठिन श्लोक बोल देते थे। जब तक गणेशजी रुककर इस कूट श्लोकका अर्थ समझते तब तक व्यासजी सौ सवा सौ श्लोक और सोच लेते थे। इस प्रकार ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ।

इस सम्बन्धमें यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि यह कथा सब पुरानी प्रतियोंमें नहीं मिलती। दूसरी बात यह है कि गणेशजीके इसके पूर्वके जीवन-चरितमें ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे उनके लेखक होनेकी पात्रताका पता चलता हो। किसी पुराणमें कोई ऐसा आख्यान नहीं मिलता जिससे यह जाना जाय कि महाभारत लिखनेके पहिले या बाद गणेशजीने कभी लेखक का काम किया था। यह बात भी ख्यालमें रखनेकी है कि महाभारतमें गणेशजीके सूँड़का, उनके गजवदन होनेका, उल्लेख नहीं है।

छठवाँ अध्याय

योगशास्त्रमें गणेश

योगविद्या भारतके अध्यात्मशास्त्रका प्रधान अङ्ग है। इस देशमें दर्शन केवल चित्तविलासके लिए नहीं पढ़ा जाता था। उसके अध्ययनका प्रयोजन मोक्ष होता था और मोक्षके लिए यह आवश्यक माना जाता था कि दार्शनिक तथ्योंका श्रवण करके उन पर मनन किया जाय, फिर निदिध्यासनका अभ्यास हो, अर्थात् समाधिके द्वारा सत्यका साक्षात्कार किया जाय। इसलिए वेदके जिस उपनिषद् भागमें ब्रह्मज्ञानका प्रवचन है उसीमें योगाभ्यास करनेका आदेश है और अभ्यासके उपाय भी बताये गये हैं।

परन्तु उपनिषदोंमें इस विषयको स्पष्ट रूपसे बहुत कम स्थान दिया गया है। शिष्य लोग अपने गुरुओंसे जो प्रत्यक्ष शिक्षादीक्षा पाते थे वह पर्य्याप्त समझी गयी। बादमें योगके सम्बन्धमें बहुतसी स्वतन्त्र पुस्तकें लिखी गयीं। पातञ्जल योग-दर्शन तो योगशास्त्रका सिद्धान्त ग्रन्थ है, उसके अतिरिक्त घेरण्डसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, शिवसंहिता, गोरक्षसंहिता जैसी कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनके सिवाय प्रायः सभी पुराणोंमें योगका चर्चा है।

योगके आचार्य्योंका कहना है कि मेरुदण्डके मध्यमें जो सुषुम्ना नाड़ी है वह ब्रह्मरन्ध्रमें प्रवेश करके मस्तिष्कके नाड़िगुच्छसे मिल जाती है। साधारण अवस्थामें प्राण सारे शरीरमें बिखरा रहता है, उसके साथ चित्त भी चञ्चल बना रहता है। योगी क्रिया विशेषके द्वारा प्राणको सुषुम्नामें खींच कर ले आता है और ऊपर चढ़ाता है। ज्यों ज्यों प्राण ऊपर चढ़ता है त्यों त्यों चित्त शान्त होता है, योगीके ज्ञान और शक्तिमें वृद्धि होती है। सुषुम्नामें नीचेसे ऊपर तक कई नाड़िकन्द या नाड़ियोंके गुच्छे हैं। इनको क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञाचक्र कहते हैं। प्रत्येक चक्रके अनुभव अपूर्व हैं। उनका वर्णन शब्दोंमें करना बहुत कठिन है। जिसको सद्गुरुकृपासे वह पद प्राप्त होता है वही जान सकता है।

यहाँ हमारे लिए इस विषयका पूरा वर्णन करना अप्रासङ्गिक होगा। यह चर्चा इसलिए उठाया गया है कि जिन पुस्तकोंमें चक्रोंका विस्तृत विवरण दिया रहता है उनमेंसे कुछमें गणेशजीका भी नाम आता है। लिङ्गमूलसे नीचे और गुद-स्थानसे ऊपर सीवनमें सुषुम्नाके निचले मुखके पास मूलाधार चक्र है। उसका प्रामाणिक वर्णन षट्चक्रनिरूपणके ९ श्लोकोंमें दिया हुआ है। उदाहरणके लिए हम यह थोड़ेसे अवतरण देते हैं:—

आधारपद्मं सुषुम्नास्य लग्नं ध्वजाधो गुदोर्द्धं चतुः शोणपत्रम्।
अधोवक्त्रमुद्यत् सुवर्णाभवर्णैर्वकारादिसान्तैर्युतं वेदवर्णैः॥
अमुष्मिन् धरायाश्चतुष्कोण चक्रं समुद्भासि शूलाष्टकैरावृतं तत्।
लसत्पीतवर्णः......... ॥

पहिले चौथा श्लोक, उसके बाद पाँचवें श्लोकका कुछ अंश है। यहाँ यह कहा गया है कि आधार (मूलाधार) पद्म सुषुम्नाके मुखसे लगा हुआ है। वह ध्वजसे नीचे और गुदासे ऊपर है। उसकी चार पँखुरियाँ हैं। चारो लाल हैं। वह उलटा है (अर्थात् नाल ऊपरकी ओर है)। दलों पर व श ष स वर्ण ध्वनित हो रहे हैं। उसकी कर्णिकामें धरा (भू= पृथिवी) का पीतवर्ण चक्र है। वह चतुष्कोण है। उसकी आठ दिशाओंमें एक एक शूल-कुलाचल या पहाड़ है। इसके आगे छठें श्लोकमें बतलाया है कि वहाँ 'चतुर्बाहुभूष गजेन्द्राधिरूढ़' इन्द्रका तथा 'शिशु सृष्टिकारी वेदबाहु' (अर्थात् चतुर्भुज) ब्रह्माका निवास है।

इस स्थानको गणेशस्थान भी कहा जाता है। सिद्धों और नाथोंसे यह परम्परा सन्तमतमें आयी। कबीर आदिने जहाँ चक्रोंका वर्णन किया है वहाँ पहिले स्थानको गणेशस्थान ही कहा है। उदाहरणके लिए गरीबदासजीकी बानीमें ब्रह्मवेदी देखिये। उसका दूसरा पद है:—

मूलचक्र गनेसबासा रक्तबरन जहँ जानिये।
क्लिङ्ग जाप कुलीन तज सब शब्द हमारा मानिये॥
[क्लिङ्ग=क्लीं]

योगकी प्रामाणिक पुस्तकोंमें इस प्रथम चक्रको कहीं भी गणेशका स्थान नहीं माना गया है, फिर भी एक परम्परा ऐसी है। उदाहरणके लिए बालापद्धतिके इस श्लोकको लीजिये। इसमें छहों चक्रोंके देवोंके नाम दिये हैं। पहिले चक्रका स्वामी गणेशको बताया है।

गणेश्वरो विधिर्विष्णुः शिवो जीवो गुरुस्तथा।
षडेते हंसतामेत्य, मूलाधारादिषु स्थिताः॥

[गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव और गुरु—यह छः क्रमसे मूलाधारादिमें स्थित हैं]

मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि यह परम्परा पीछेसे चली है और भ्रान्तिमूल है। जैसा कि योगदर्शनके 'भुवनज्ञानं सूर्य्येसंयमात्' सूत्रकी टीकामें वाचस्पतिने विस्तारसे दिखलाया है, भूर्लोकके नीचे अपदेवोंके लोक हैं। इनमें पिशाच, राक्षस, असुर, ब्रह्मराक्षस, वेताल, कूष्माण्ड, भैरव, विनायक सभी परिगणित हैं। भूतत्व और भूर्लोकका सम्बन्ध प्रथम चक्रसे है। षट्चक्र निरूपणके अनुसार यह धराचक्र (भूचक्र) चतुष्कोण है, इसलिये चतुष्कोणको भूतत्वका प्रतीक मानते हैं। अतः विनायकों और उनके अधिपति गणेशका स्थान मूलाधार चक्रसे नीचे है। परन्तु जब गणेशका सभी मङ्गल कामोंसे सम्बन्ध जुड़ गया तो भ्रान्तिवशात् उनका स्थान खसककर ऊपर उठा लिया गया और यह मान लिया गया कि योगमें भी सिद्धि तभी होती है जब पहिले प्रथम चक्रमें गणेशका साक्षात्कार हो। इस प्रकार स्वस्तिक जो चतुष्कोणका रूपान्तर है गणेशका चिह्न बन गया। यह स्पष्ट ही है कि गणेशको आधारचक्रका अधिष्ठाता माननेकी भूल ऐसे लोगोंसे ही हुई होगी जो स्वयं योगी नहीं थे।

सम्भव है यह मेरी कल्पना ही हो परन्तु कोई दूसरी मीमांसा अबतक देखनेमें नहीं आयी है। यह भी नहीं कह सकते कि षट्चक्रनिरूपणकारसे भूल हुई है। अन्य स्थलोंमें भी उनके ही कहनेकी पुष्टि होती है। महानिर्वाण-तन्त्र कहता है:—

आधारचक्रं तत् पद्मं धरामध्ये चतुर्दलम्।
पद्ममध्ये बीजकोशे क्षितिचक्रं मनोहरम्॥
तत्रैव निवसेद्ब्रह्मा सृष्टिकर्ता प्रजापतिः।
वामभागे च सावित्री वेदमाता सुरेश्वरी॥

[आधारचक्र धराके मध्यमें चतुर्दल कमल है। कमलके मध्यमें बीजकोशमें मनोहर क्षितिचक्र है।......वहीं सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं। उनके वामभागमें वेदमाता सुरेश्वरी सावित्री स्थित हैं।]

सातवाँ अध्याय

तंत्रमें विघ्नराज

तंत्रकी पुस्तकोंमें गणेशजीका वहुत वर्णन मिलता है। आजसे कुछ दिन पहले तन्त्रको बुराभला कहनेकी प्रथा चल पड़ी थी। यह मान लिया गया था कि तंत्रोंमें पूजापाठकी आड़में व्यभिचार को प्रोत्साहन दिया गया है और तान्त्रिक क्रियाएँ उपासनाके नामपर मनुष्यकी विषयवासनाओंकी तृप्तिका साधन हैं। रतिवासनाकी उच्छृङ्खल तुष्टिका बहाना तान्त्रिक चक्रोपासनामें मिलता है। अब धीरे धीरे यह धारणा कम हो रही है। पशु साधकके लिए तन्त्राचार्य्योंने जिन बातोंकी विशेष परिस्थितियोंमें अनुमति दे रखी थी उनका निःसन्देह दुरुपयोग किया गया परन्तु इससे सारा तन्त्रशास्त्र दूषित नहीं हो सकता। तन्त्र ग्रन्थोंके अनुशीलनसे कई आध्यात्मिक प्रश्नोंको समझनेमें सहायता मिलती है। कठिनाई यह है कि तन्त्र ग्रन्थ जिस दुर्बोध समाधिभाषामें लिखे गये हैं उसकी मीमांसा करना सुगम नहीं है। साधक ही उनका ठीक ठीक अर्थ लगा सकता है और साधक प्रायः चुप रहना पसन्द करता है। इसके साथ ही यह भी निःसन्देह सत्य है कि तान्त्रिक उपासनाकी आड़में मद्यमैथुनादिके सेवनका अवसर मिलता है और बहुत लोग इसी लालचसे इस ओर झुकते थे। ऐसा भी प्रतीत होता है कि तान्त्रिक उपासनाशैलीके विस्तारमें ऐसे लोगोंका हाथ रहा है जो किसी भी दृष्टिसे साधक नहीं कहे जा सकते थे।

तन्त्र यकायक पैदा नहीं हुआ। उसका इतिहास बहुत पुराना है। उसकी जड़ वेदोंतक पहुँचती है परन्तु उसका विकास बौद्धकालके बाद हुआ। महायान बौद्ध सम्प्रदायकी उपासना पद्धति और तान्त्रिकशैलीमें स्पष्ट ही समता है। यह समता स्वीकार की गयी है। रुद्रयामल तन्त्रका वृहत् और प्रामाणिक ग्रन्थ है। उसमें यह कथा दी है कि एकवार वशिष्ठजी को वैराग्य हुआ और वह मुमुक्षु होकर आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिए व्याकुल हो उठे। गुरु ढूँढा, शास्त्रोंमें बतायी हुई सभी साधनाएँ कर डालीं, पर चित्त शान्त न हुआ। तब वह दैवप्रेरणासे महाचीन गये। वहाँ उन्होंने लामा नामके महामुनिके दर्शन किये और उनके उपदेशसे मुक्त हुए। यही ज्ञान रुद्रयामलमें प्रतिपादित है। इस कथा की ऐतिहासिकताके विषयमें तो मैं कुछ नहीं कहता। अपना अपना विश्वास है। जो लोग ऐसा मानते हैं कि कलियुगमें वैदिक साधनाएँ कीलित हो गयी हैं, केवल तान्त्रिक उपाय ही वीर्य्यवान रह गये हैं, उनको इसपर पूरी श्रद्धा हो सकती है। मैं यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि तिब्बत महायान बौद्ध सम्प्रदायका प्रधान पीठ है और तिब्बतकी बोलीमें साधु या धर्म्मोपदेष्टा को आज भी लामा कहते हैं। इस कथा से महायान बौद्धमत और तन्त्रके सम्बन्धपर प्रकाश पड़ता है। जैसा कि हम नवें अध्यायमें देखेंगे, बौद्धग्रन्थोंमें भी गणेशजीने स्थान पाया है।

तन्त्राचार्य्योंका आदेश है कि सभी मङ्गल कार्य्योंके आरम्भमें गणेश, नवग्रह तथा मातृकाओंका पूजन किया जाय। उदाहरणके लिए हम महानिर्वाणतन्त्रके दशमोल्लासमें दी हुई उस पद्धति को अवतरित करते हैं जिसके अनुसार अभिषेक अर्थात् गुरुदीक्षाके अवसरपर गणपतिका पूजन किया जाना चाहिये। यह पूजा दीक्षाके एक दिन पहिले होती है।

पहिले गणेशजीके बीजमन्त्रके साथ छ दीर्घस्वरों को मिलाकर षडङ्गन्यास किया जाय। गणेशका बीजमन्त्र ग (गं) है। भूतडामर तन्त्रके अनुसार 'गकारो विन्दुमान् विघ्नराजं गणेशबीजकम्'—विन्दुसमेत गकार विघ्नराज और गणेशबीज है। उसके ऋषि गणक, छन्द निवृत् है, विघ्न देवता है और विघ्नशान्त्यर्थ विनियोग है।

अङ्गन्यासकी विधि इस प्रकार है:

गां अङ्गुष्ठाभ्याम् नमः
गीं तर्जनीभ्याम् स्वाहा
गूं मध्यमाभ्याम् वषट
गैं अनामिकभ्याम् हुम्

गौं कनिष्ठाभ्याम् वौषट्
गः करतलपृष्ठाभ्याम् फट्

पहिले हाथ को यों पवित्र करके तब शरीरका शेष उत्तमांश पवित्र किया जाता है। उसके लिए इस भाँति मन्त्रपाठ होता है।

गां हृदयाय नमः
गीं शिरसे स्वाहा
गूं शिखायै वषट्
गैं कवचाय हुम्
गौं नेत्रत्रयाय वौषट्
गः करतलपृष्ठाभ्याम् फट

इसके उपरान्त प्राणायाम करके गणेशजीका ध्यान किया जाय। ध्यानका स्वरूप यह है :

सिन्दूराभं त्रिनेत्रं पृथुतरजठरं हस्तपद्मैर्दधानम्।
खड्गं पाशाङ्कुशेष्टान्युरुकरविलसद्वारुणीपूर्णं कुम्भम्॥
बालेन्दुद्दीप्तमौलिं करिपतिवदनं बीजपूराद्रं गण्डं।
भोगीन्द्राबद्धभूषं भजत गणपतिं रक्तवस्त्राङ्गरागम्॥

[उन गणपतिका भजन करो जो सिन्दूरके रङ्गके, तीन आँखोंवाले बड़े पेट वाले और लाल वस्त्र तथा सर्पसे विभूषित हैं, जिनके मस्तकपर बालचन्द्र है और सिर हाथी जैसा है, जिनके कपोल मदके प्रवाहसे गीले हो रहे हैं, जिनके कर कमलोंमें खड्ग, पाश, अङ्कुश और मदिरासे भरा घड़ा है]

गणेशजीका मानस ध्यान करके गन्धपुष्पादिसे गणेशपीठकी शक्तियोंका पूजन किया जाय। इनके नाम हैं तीव्रा, ज्वालिनी, नन्दा, भोगदा, कामरूपिणी, उग्रा, तेजस्वनी, सत्या और विघ्नविनाशिनी। तब गणपति को पञ्चतत्व अर्थात् पञ्चमकार (मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन अर्थात् स्त्री) अर्पित करके उनके चारों ओर उनकी अपर विभूतियोंकी पूजा की जाय। इनके नाम है गणनायक, गणनाथ, गणक्रोड़, एकदन्त, रक्तसुण्ड, लम्बोदर, गजानन, महोदर, विकट, धूम्राभ और विघ्ननाशन। इसके उपरान्त ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ तथा दिक्पालोंकी पूजा करके विघ्नराजको विघ्नराज क्षमस्व (विघ्नराज, क्षमा करो) कहकर विसर्जित कर दिया जाय।

घर बनवाने, कुआँ खुदवाने तथा ऐसे ही अन्य शुभकर्म्मोंमें भी गणपतिपूजन का विधान है। उन अवसरोंके लिए यह ध्यान बताया गया है :—

बन्धूकाभं त्रिनेत्रं द्विरदवरमुखं नागयज्ञोपवीतं।
शङ्खं चक्रं कृपाणं विमलसरसिजं हस्तपद्मैर्दधानम्॥
उद्यद्बालेन्दुमौलिं दिनकरकिरणोद्दीप्तवस्त्राङ्गशोभम्।
नानालङ्कारयुक्तं भजत गणपतिं रक्तपद्मोपविष्टम्॥

[उन गणपतिका भजन करो जो लाल कमल पर बैठे हुए हैं, जिनका रङ्ग लाल है, तीन आँखें हैं, हाथीके समान मुख है, सर्पका यज्ञोपवीत है, मस्तकपर बालचन्द्र है, सूर्य्यके किरणोंके समान जिनका वस्त्र उद्दीप्त है, जिनके कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, कृपाण और कमल है।]

गणपति पूजनके बाद ही शक्तियोंकी पूजाका विधान है। गणपतिका इन शक्तियोंके साथ तन्त्राचारमें विशेष सम्बन्ध हो गया है। कई जगह इनकी और गणपतिकी मूर्तियाँ भी साथ ही मिलती हैं। बाईं ओर गणपति, फिर देवियाँ

होती हैं। फलक ३ देखिये। यह पत्थरके एक करगहनेका चित्र है जो भुमरामें मिला था। इस समय प्रयागके म्युनिसिपल म्यूज़ियममें है। इन देवियोंको मातृका कहते हैं। व्याकरणके अनुसार मातृकाका अर्थ है माताइव, माताके तुल्य। यह देवियाँ यों तो क्रूर स्वभाववाली हैं परन्तु तुष्ट करनेपर मातृवत पालन करती हैं। इस बातमें इनकी और विघ्नेश्वर गणेश की स्वभावसमता है। बच्चोंकी रक्षा करनेके लिए इनकी विशेष रूपसे पूजा की जाती है। वाराह पुराणमें इनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार दी हुई है। एक बार अन्धकासुर नामक दैत्यसे देवगणका भयानक संग्राम हुआ। उसके लोहू के बूँदोंसे उसके ही समान नये अन्धकासुर बन जाते थे। इसलिए उसको मारना कठिन था। लड़ते लड़ते क्रोधके आवेशमें शङ्करके मुखसे अग्निकी ज्वाला निकली। वह देवी बनगयी। इसका नाम योगेश्वरी पड़ा। इसी प्रकार माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्राह्मी, कौमारी, ऐन्द्राणी, दण्डधारिणी और वाराहीने भी रुद्र, विष्णु, इन्द्र आदि देवोंके तेजसे शरीर धारण किया। इनकी सहायतासे अन्धक मारा गया। मातृकाएँ मनुष्यके अन्तःकरणकी दुष्प्रवृत्तियोंकी अधिष्ठात्री देवता मानी जाती हैं। योगेश्वरीका कामसे, माहेश्वरीका क्रोधसे, वैष्णवीका लोभसे, ब्राह्मीका मदसे, कौमारीका मोहसे, ऐन्द्रीका मात्सर्य्यसे, दण्डधारिणीका पैशुन्यसे और वाराहीका असूयासे संबंध माना जाता है। कहीं-कहीं दण्डधारिणीकी जगह चामुण्डा और ऐन्द्रीकी जगह अपराजिताका नाम आता है। शारदातिलकमें व्यापिनी, तापिनी, पाविनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी, शंखिनी तथा ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मी नामसे षोडश मातृकाओंका उल्लेख है।

शारदातिलकके त्रयोदश पटलमें बड़े विस्तारसे गणपति पूजाका विधान दिया हुआ है। कई प्रकारके जप, ध्यान और होम बतलाये गये हैं। पटलके अन्तमें एक स्तोत्र है। उसमेंसे कुछ श्लोक अवतरित किये जाते हैं।

कृताङ्गरागं नवकुंकुमेन मत्तालिमालां मदपंकलग्नां।
निवारयंतं निजकर्णतालैः को विस्मरेत्पुत्रमनंगशत्रोः॥
त्वया समुद्धृत्य गजास्यहस्त ये सीकरा पुष्करंध्रमुक्ताः।
व्योमांगणे ते विचरन्ति ताराः कालात्मना मौक्तिकतुल्यभासाः॥
क्रीड़ारते वारिनिधौ गजास्ये वेलामतिक्रामति वारिपूरे।
कल्पावसानं परिचिन्त्य देवाः कैलासनाथं स्तुतिभिः स्तुवंति॥
पदं स्तुतीनामपदं श्रुतीनां लीलावतारं परमष्टमूर्त्तेः।
नागात्मकोवा पुरुषात्मको वेत्यभेद्यमाद्यं भज विघ्नराजम्॥
वेदान्तगीतं पुरुषं भजेऽहमात्मानमानन्दघनं हृदिस्थम्।
गजाननं यन्महसाजनानां महान्धकारो विलयं प्रयाति॥

[कामदेवके शत्रु महादेवके उन पुत्रको कौन भूल सकता है जिन्होंने नवकुंकुमसे अपने शरीरको सजाया है और अपने गंडस्थलपर बहते हुए मदपर मँड़राती हुई भ्रमरमाला को कानोंके पंखेसे उड़ाते रहते हैं।

हे गजवदन, आपने कालात्मक रूपसे सूँड़से जल उठाकर जो छींटे बिखेर दिये थे वह आकाशमें मुक्ताके समान फैलकर तारे बन गये हैं।

जब गणेशजी समुद्रके जलसे खेलते हैं तो पानीकी तरंगें ऐसी ऊँची उठती हैं कि देवगण समझते हैं कि प्रलयका समय आ गया है और कैलासनाथकी स्तुति करने लगते हैं।

उस विघ्नराजका भजन करो जो स्तुतियोंके आश्रय हैं, जिनको वेद भी नहीं पा सकता, जो अष्टमूर्ति भगवान् शंकर के लीलावतार हैं, जो आदिपुरुष हैं, जिनके विषयमें यह भेद नहीं किया जा सकता कि वह गजात्मक हैं या पुरुषात्मक हैं।

मैं उन गजाननका भजन करता हूँ जिनका पुरुष नामसे वेदान्त गान करता है, जो हृदयमें स्थित आनन्दघन आत्मा हैं, जिनके तेजसे मनुष्यों का महान्धकार विलीन हो जाता है।]

इस सुन्दर स्तवके माहात्म्यमें बतलाया गया है कि जो लोग यज्ञ और तपके साथ इस स्तुतिसे गजराजवक्त्रका आराधन करते हैं वह सर्वलक्ष्मीनिधि हो जाते हैं।

इसी शारदातिलकके अठारहवें पटलमें शिवकी पूजाकी विधि दी हुई है। उसमें गणेशका जो स्वरूप बताया है उसमें उनको श्याम कहा है। यह विलक्षण है, क्योंकि अन्यत्र उनका रंग प्रायः सिंदूर जैसा बतलाया गया है।

अभीतक गणेशोपासनाकी जो विधियाँ इस पुस्तकमें दिखलायी गयी हैं वह ऐसी हैं जिनमें प्रायः जुगुप्साकी कोई विशेष बात नहीं है परन्तु तन्त्रोक्त वाममार्गीय उपासनापद्धतियोंमें कई ऐसी बातें होती हैं जिनको सामान्यतः बुद्धिमें बैठाना कठिन होता है। ऊपर महानिर्वाणतन्त्रोक्त जो पूजा बतायी गयी है उसमें भी पञ्चमकारका प्रयोग दिया हुआ है। वह साधारण उपासकको रुचिकर नहीं हो सकता। पञ्चम मकार, मैथुन, की बातको तो सोचकर जी काँप उठता है, परन्तु तन्त्रकी उपासना-शैली ऐसी होती ही है। शारदातिलकके जिस पटलसे हमने स्तोत्रके कतिपय श्लोक उद्धृत किये हैं उसमें गणेशजीके कई ध्यान दिये हुए हैं। सामान्यतः इनको अश्लील कहा जायगा। दृष्टान्तस्वरूप मैं एकको अवतरित करता हूँ और इच्छा न होते हुए भी उसका भावानुवाद दे देता हूँ :—

सिन्दूराभनिभाननं त्रिनयनं हस्तेषु पाशांकुशौ,
बिभ्राणं मधुमत्कपालमनिशं सार्द्धेन्दुमौलिं भजेत्।
पुष्ट्याश्लिष्टतनुं ध्वजाग्रकरया पद्मोल्लसद्हस्तया,
तद्योन्याहित पाणिमात्तवसुमत्पात्रोल्लसत्पुष्करम्॥

यह पुष्कर गणपतिका ध्यान है, इस आदेशका यह भाव है :— उन पुष्करका भजन करे जिनका सिन्दूरके रङ्गका सूँड़ है, तीन आँखें हैं, जिनके चार हाथोंमें से तीनमें पाश, अङ्कुश और मदिराका पात्र है। उनके शरीरको पुष्टिनामक शक्तिने आलिंगन कर रखा है। पुष्टिके दो हाथोंमें कमल है, एक गणेशजीके गलेमें है। गणेशका चौथा हाथ पुष्टिके गुह्यांगके ऊपर और पुष्टिका चौथा हाथ गणेशके गुह्यांगपर है।

इस ध्यानमें गणेशके साथ पुष्टि शक्तिका उल्लेख है। दूसरे दूसरे ध्यानोंमें दूसरी दूसरी शक्तियाँ उनके साथ रहती हैं, जप पूजाकी विधियोंमें भी अन्तर है। इस प्रकार एक गणेश या महागणाधिपतिके अनेक भेद हो गये हैं। शारदा-तिलकके अनुसार एक महागणपति देवताके २४ देवता, ५५ देवता और ४४० देवता हो सकते हैं। मुख्यभेदोंके नाम भी कई प्रकारसे लिये जाते हैं। इनको कहीं महागणाधिपति, कुमारगणपति, हेरम्बसुत, नवनीत, स्वर्ण और सन्तान कहा है। महागणपति, सन्तान गणपति, स्वर्गगणपति और नवनीत गणपतिके साथ हरिद्रागणपति और उच्छिष्ट गणपति तथा ऊर्ध्व-गणपति, लक्ष्मीगणपति और पिङ्गल गणपतिके नाम आये हैं। शारदा तिलकमें इनके अतिरिक्त विदि, पुष्कार, हेरम्ब, शक्ति और सुब्रह्मण्य जैसे गणपतियोंके पूजनका भी उल्लेख है।

शक्तियुक्त गणपतियोंकी बहुतसी मूर्तियाँ मिलती हैं। फलक ४ में एक ऐसी ही मूर्तिका चित्र दिया गया है। यह मूर्ति उच्छिष्ट गणपतिकी है। उच्छिष्ट गणपतिकी मूर्तियाँ प्रायः ऐसी ही मुद्राओंमें पायी जाती हैं जिनको हम साधारण बोल-चालमें अश्लील कहते हैं। गणपति और शक्ति दोनों नग्न होते हैं। जिन पुष्कर गणपतिका ध्यान हम इसके पहिले उद्धृत कर चुके हैं उनको उच्छिष्ट गणपतिका ही भेद मानना चाहिये। जो चित्र हमने दिया है उसमें सूँड़ ही अभद्र व्यापारमें रत दिखलायी गयी है परन्तु इससे कहीं भ्रष्ट मूर्तियाँ मिलती हैं। रावकी एलिमेण्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफीमें एक ऐसी ही मूर्ति दी हुई है। वह बहुत ही गन्दी है। प्रयागके म्युनिसिपल म्यूजियममें हाथका बना एक ऐसा ही चित्र है। उसमें गणपति और शक्ति दोनोंका रङ्ग काला है।

उच्छिष्टका अर्थ जूठा होता है। कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि इस विग्रहका ध्यान गुदस्थान अर्थात् शरीरके अपवित्र अङ्गमें किया जाता है इसलिए इसका उच्छिष्ट नाम पड़ा है।

गणेशके भिन्न भिन्न विग्रहोंके हाथमें जो आयुध होते हैं वह सब फलक ८में दिखलाये गये हैं।

इन विशेष विग्रहोंकी पूजाका स्वरूप जाननेके लिए एक उदाहरण पर्य्याप्त होना चाहिये। महागणपतिका मन्त्र यह है:—

श्री शक्तिस्मरभूविघ्न बीजानि प्रथमं वदेत्।
ङे ऽन्तं गणपतिं पश्चात् वरान्ते वरदं पदम्॥
उक्त्वा सर्वजनं मे ऽन्ते वशमानय तु द्वयम्।
अष्टाविंशत्यक्षरोऽयं ताराद्यो मनुरीरितः॥

[पहिले श्री शक्ति कामदेव, भूमि और विघ्नके बीजोंका उच्चारण करे, फिर ङेऽन्त गणपति इसके पीछे वर और वरके अन्तमें वरद पद कहकर सर्वजनं मेके बाद दो बार वशमानय। यह अट्ठाइस अक्षरका मन्त्र है। इसके आदिमें तार है।]

ऐसे वाक्योंका अर्थ लगाना बहुत कठिन होता है। तार प्रणवको कहते हैं ङेऽन्त गणपतिसे तात्पर्य्य है चतुर्थी विभक्तिके साथ गणपति शब्द अर्थात् गणपतये। अन्तमें सर्वजनं मे वशमानय वशमानय कहना होगा, यह भी स्पष्ट है। शेष टेढ़ा है। तन्त्रभिधानके अनुसार श्री आदिके बीजमन्त्र यह हैं*:—

श्री—ऋ, श्रीं, ढ
शक्ति—ए, त, स, सौः, ह्रीं
स्मर (कामदेव)—इ, ई, क्लीं, ज, र, क्ष
भूमि—ब, भ, भू, ल
विघ्न—गं
वर—द
वरद—थ, द

अब इस मन्त्रमें इनमें से कौनसे बीजाक्षर लिये जायँ ? एक रूप यह हो सकता है :—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ल गं गणपतये द थ सर्वजनं मे वशमानय वशमानय

परन्तु उपर्युद्धृत श्लोकमें ऐसा कोई सङ्केत नहीं है जिससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सके कि यह रूप ठीक है। मन्त्रका वास्तविक रूप दीक्षाके समय गुरुमुखसे ही जाना जा सकता है।

हम एक पिछले पृष्ठपर बतला आये हैं कि गणेशका बीजमन्त्र गं है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका एक ही बीज है। गजानन, गणनाथ, गणनायक, गणपति, गणेश, गणेश्वर नामोंके अलग अलग बीज हैं। तन्त्र ग्रन्थोंमें इनका पृथक् पृथक् प्रयोग हुआ है। सम्प्रदायवेत्ता ही इनका यथास्थान व्यवहार कर सकता है।

महागणपतिका यह ध्यान है:—

नवरत्नमयं द्वीपं स्मरेदिक्षुरसाम्बुधौ।
तद्वीचिधौतपर्य्यन्तं मन्दमारुतसेवितम्॥
मन्दारपारिजातादि कल्पवृक्षलताकुलम्।
उद्भूतरत्नच्छायाभिररुणीकृत भूतलम्॥
उद्यद्दिनकरेन्दुभ्यामुद्भापित दिगन्तरम्।
तस्य मध्ये पारिजातं नवरत्नमयं स्मरेत्।
ऋतुभिः सेवितं षड्भिरनिशं प्रीतिवर्द्धनम्॥
तस्याधस्तान्महापीठे रचिते मातृकाम्बुजे।
षट्कोणान्तस्त्रिकोणस्थं महागणपतिं स्मरेत्॥

---

* श्री पञ्चानन भट्टाचार्य्य सम्पादित तन्त्रभिधानके अनुसार। इस सम्बन्धमें दक्षिणामूर्तिकृत उद्धारकोषसे भी सहायता ली जा सकती है।

हस्तीन्द्राननमिन्दुचूड़मरुणच्छायं त्रिनेत्रं रसा- ।
दाश्लिष्टं प्रियया सपद्मकरया स्वाङ्कस्थया सन्ततम् ॥
बीजापूरगदाधनुस्त्रिशिखयुक् चक्राम्बु पाशोत्पलम् ।
व्रीह्यग्रं स्वविषाण गण्डकलसान् हस्तैर्वहन्तं भजे ॥

[साधकको चाहिए कि अपनी मूर्धामें इक्षुरसाब्धि (ईखके रसके समुद्र) के बीचमें नवरत्नकल्पित द्वीपकी कल्पना करे । उस पर मन्द-मन्द पवन बह रही हो, मन्दार पारिजात कल्पवृक्ष इत्यादि बहुतसे पेड़ लगे हों और लताएँ फैली हों, रत्नोंकी प्रभासे भूतल अरुणसा हो गया हो । सूर्य्य और चन्द्रके प्रकाशसे दिगन्त उद्भासित हो रहा हो । उस द्वीपके मध्यमें नवरत्नमय पारिजात हो, षड्ऋतु उसका सेवन करते हों, प्रीतिवर्धन हो । उसके नीचे आसनपर कमलके बीचमें षट्कोण, उस षट्कोणके भीतर त्रिकोण, उसके भीतर स्थित महागणपतिका स्मरण करे । उनका मुँह हस्तिराजके तुल्य है, मस्तकपर चन्द्रमा है, लाल रंग है, तीन आँखें हैं, उनके बगलमें स्थित पद्महस्ता प्रिया उनको प्रेमसे आश्लिष्ट किए हुए हैं, उनके हाथोंमें अनार* गदा, तीर धनुष, चक्र, कमल, पाश, कलस, अन्नकी फली और अपना टूटा दाँत है । सूँडको भी हाथसे सँभाले हुए हैं ।

प्राणतोषिणी में गणपतिके पचास नाम और इन पचासों गणपतियोंकी शक्तियों के नाम दिए हुए हैं । गणपतियोंके नाम यह हैं :—

विघ्नेशः, विघ्नराजः, च विनायक, शिवोत्तमौ ।
विघ्नहृत्, विघ्नकर्ता, च गणैकद्विसुदन्तकाः† ॥ (६)
गजवक्त्र, निरञ्जनौ, कपर्दी, दीर्घजीवकः ।
शङ्कुकर्णः, च वृषभध्वजः, च, गणनायकः ॥ (७)
गजेन्द्रः, सूर्य्यकरणः च, स्यात् त्रिलोचन, संज्ञकः ।
लम्बोदर, महानन्दौ, चतुर्मूर्ति, सदाशिवौ ॥ (७)
अमोघ, दुर्मुखौ चैव, सुमुखः, च प्रमोदकः ।
एकपादो, द्विजिह्वः, च शूर, वीर, शिवामुखाः ॥ (९)
वरदो, वामदेवः, च वक्रतुण्डः, द्विरण्डकः ।
सेनानीः, ग्रामणीः, मत्तः, विमत्तः, मत्तवाहनः ॥ (६)
जटी, मुण्डी, तथा खड्गी, वरेण्यः, वृषकेतनः ।
भक्ष्यप्रियः, गणेशः, च, मेघनायक, संज्ञकः ॥ (८)
व्यापी, गणेश्वरः, प्रोक्तः पञ्चाशद्गणपा इमे । (१)

और शक्तियोंके नाम इस प्रकार हैं:—

ह्रीः श्रीः, च पुष्टिः, शान्तिः च, क्षान्तिः, चैव सरस्वती ।
स्वाहा, मेधा, कान्तिः, कामिनी, मोहिनी, अपि वै नटी ॥ (१२)
पार्वती, ज्वलिनी, नन्दा, सुयशाः, कामरूपिणी ।
उग्रतेजोवती, सत्या, विघ्नेशानी, सुरूपिणी ॥ (६)
कामदा, मदजिह्वा, च भूतिः, स्यात् भौतिका, सिता ।
रमा, च महिषी, प्रोक्ता भञ्जिनी, च विकर्णपा ॥ (६)

*पूर आया है । बीजापूर या बीजपूर अनार को भी कहते हैं और बिजोरे नीबूको भी ।
† गणैकदन्त, गणद्विदन्त, गणसुदन्त (३) ।

भ्रुकुटिः, स्यात् तथा लज्जा, दीर्घघोणा, धनुर्धरा।
यामिनी, रात्रि, संज्ञा च, कामान्धा, च शशिप्रभा ॥ (८)
लोलासी, चञ्चला, दीप्तिः, शुभगा, दुर्भगा, शिवा।
गर्भा, च भगिनी, चैव, भोगिनी, सुभगा, मता ॥ (१०)
कालरात्रिः, कालिका च, पञ्चाशच्छक्तयः स्मृताः। (२)

(नामोंको स्पष्ट करनेके लिए इन श्लोकों को संधि तोड़कर उद्धृत किया गया है।)

विशेष अवसरों पर और विशेष सम्प्रदायोंमें गणेशजीकी पूजाकी जो तन्त्रोक्त विधियाँ प्रचलित हैं उनको लिखनेके लिये एक पृथक् विशाल ग्रंथ चाहिये। यहाँ हमारा उद्देश्य केवल दिग्दर्शन कराना था। कहीं गणेशजीके हाथमें बीजपूर (अनार या नीबू) होता है, कहीं मोदक, अस्त्रोंमें भी हेर फेर हो जाता है। वाहन प्रायः चूहा रहता है, परन्तु कभी कभी दूसरी सवारियाँ भी होती हैं। हेरम्ब गणपति सिंहकी सवारी करते हैं। इनका एक चित्र फलक ४ में दिया गया है। कभी गणेश जी समसुद्रासे खड़े रहते हैं, कभी शरीरमें बल पड़े होते हैं। बलोंकी संख्याकी दृष्टिसे मूर्ति द्विभंगी या त्रिभंगी होजाती है। बहुधा पद्मासनसे बैठे होते हैं, कभी ताण्डव नृत्यरत देख पड़ते हैं, कभी महाराज लीलामें देख पड़ते हैं जिसमें एक जानु झुका होता है, दूसरा उठा रहता है। आँखें कभी दो, बहुधा तीन होती हैं, हाथ कभी कभी दो, बहुधा चार कभी कभी इससे अधिक भी होते हैं। मुँह प्रायः एकही होता है परन्तु पञ्चमुखी मूर्तियाँ भी मिलती हैं। रंग प्रायः सिन्दूर जैसा होता है परन्तु श्वेत या काला भी हो सकता है। हरिद्रा गणेशका रंग हल्दी जैसा माना जाता है। गलेमें कभी यज्ञोपवीत होता है, कभी सर्प, कभी कभी कमरमें भी सर्प बँधा होता है। इन ध्यानोंके अनुसार बनी मूर्तियाँ भी मिलती हैं, यद्यपि सौभाग्यकी बात है कि सब ध्यानोंको मूर्तियों और चित्रोंमें अवतरित करनेका यत्न नहीं किया गया है। फलक ४ में पञ्चमुखी गणेशका चित्र दिया गया है। यह प्राचीन मूर्ति काशीमें ढुंढिराजके पास छोटेसे मंदिरमें प्रतिष्ठित है। फलक ४ में जिस षोडशभुजावाली मूर्तिका चित्र है वह धातुकी बनी हुई है और काशी कलाभवनमें है। फलक ५ में दिखलाई हुई नृत्य गणेशकी मूर्ति कलाभवनमें है। यह काशीके पास देहातमें एक जगह मिली थी। नैपाल में नृत्य गणपति की ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं जिनमें गणेशजी चूहेपर खड़े होकर नाच रहे हैं। चूहेके मुँहमें चिन्तामणि है। नैपाली बौद्धों का विश्वास है कि वह सूर्य्यकी ज्योतिमें आपसे आप प्रकट हो गये इसलिए उनको सूर्य्य विनायक कहते हैं। उनको लोहू चढ़ाया जाता है और पशु बलि भी दी जाती है। नैपालकी राजधानी खाटमांडूमें गणेशकी दो ऐसी मूर्तियाँ हैं जिनके दोनों पावोंके नीचे एक एक चूहा है। मूर्तियों को सिर तो एक एक ही है परन्तु एक को चार, दूसरी को सोलह हाथ हैं। नैपालमें एक मन्दिरमें एक साथ पाँच विनायकोंकी मूर्तियाँ हैं; बीचमें सूर्य्य विनायक, उनके चारों ओर रक्त विनायक, सिद्धि विनायक, चन्द्र विनायक और अशोक विनायक हैं।

गणपतियोंमें एक चौर गणपति हैं। उनका बड़ा माहात्म्य है। वर्णविलास तंत्रमें स्वयं गणेशजीने कहा है:

चौरमन्त्र परिज्ञानं विना हे ब्राह्मणीश्वरि।
पुराणं प्रपठेद्यस्तु स एव मूर्तिमान् कलिः ॥
परजन्मनि पापिष्ठः स भवेच्चौर कुक्कुरः।
शिवपूजा विष्णुपूजा शक्तिपूजा तथैव च ॥
सर्वे पूजासु यत्तेजो हरते गणपः स्वयम्।
तस्माच्चौर प्रबोधार्थं चौर मन्त्रान् जपेद्दश।
ततस्तु पूजयेद्धीमान् यस्य या इष्टदेवता ॥
ततः फलमवाप्नोति ब्रह्मादित्रिदिवौकसः।
चौरमन्त्रं महामन्त्रं पञ्चाशद्गणतोषणम् ॥

[हे देवि, विना चौरमन्त्रको जाने जो पुराण को पढ़ता है वह मूर्तिमान् कलि है । वह पापी अगले जन्ममें चोर कुत्ता होगा । शिव विष्णु शक्ति आदि सब पूजाओंमें जो तेज होता है उसको स्वयं गणेश हर लेते हैं । इसलिए चौरके प्रबोधनके लिए दस चौरमन्त्रोंको जपना चाहिये फिर जिसकी जो इष्ट देवता हो उसका पूजन करे । इससे ब्रह्मादि देवोंकी उपासनाका पूरा फल मिलता है । चौरमन्त्र महामन्त्र है । इससे पचासों गणपति तुष्ट होते हैं ।]

शरीरमें ग्यारह द्वारस्थान हैं । वहाँ मन्त्रन्यास करनेसे कपाट बन्द हो जाता है, तेजकी चोरी नहीं होती और अनुष्ठानका पूरा फल मिलता है । प्रत्येक स्थानपर मन्त्रका दस बार पाठ करना चाहिये । प्रतिस्थान मन्त्र यह हैं:—

दाहिनी आँख—ह्रीं ह्रीं
बायीं ,, — ,, ,,
दाहिना कान— ,, ,,
बायाँ ,, — ,, ,,
दाहिना नथुना—हुं हुं
बायाँ ,, —,, ,,
मुँह —ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
नाभि —ऐं ह्लीं
लिंगमूल —ह्रौः
गुदस्थान —ब्लुं ब्लुं
भ्रूमध्य —हुं

इन जपोंके पहिले हृदयमें क्रोम् दस बार जप लेना चाहिये । और तो सभी पूजाओंके पहिले चौरगणेशकी पूजाका विधान है परन्तु महानिर्वाणतन्त्र बतलाता है कि ब्रह्मगायत्री (जिसका जप प्रातः सायं सन्ध्या करते समय द्विजमात्र करते हैं) इसका अपवाद है । उसका अनुष्ठान चौरगणपतिको मनाये विना ही किया जा सकता है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें बाधा डालना उनकी शक्तिके बाहर है । इस बातकी ओर हम अगले अध्यायमें फिर ध्यान आकृष्ट करेंगे ।

गणेशके आध्यात्मिक रूपके निदर्शनके लिए मैं तन्त्रराजके आरम्भमें दिये हुए गणेशस्तवको उद्धृत करता हूँ:—

अनाद्यन्तोऽपराधीनः स्वाधीनभुवनत्रयः ।
जयत्यविरतो व्याप्तविश्वः कालो विनायकः ॥

इसमें विनायकको आदि अन्त रहित स्वाधीन नित्य कालस्वरूप माना है । वह व्याप्तविश्व हैं अर्थात् दिक्के बन्धनोंसे अनवच्छिन्न हैं । सुभगानन्दनाथने मनोरमा टीकामें कहा है कि स्वाधीनभुवनत्रयका अर्थ यह है कि त्रिभुवन ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानरूपसे उनके स्वायत्त है । तात्पर्य यह है कि उनका त्रिभुवनके साथ तादात्म्य है । दूसरे शब्दोंमें, यहाँ विनायक को परमात्मारूपसे कल्पित किया है ।

गणेशजीकी पूजा ध्यानानुकारि मूर्तियोंके द्वारा तो होती ही है गाणपत्य सम्प्रदायके उत्कृष्ट उपासक उनका लिङ्गार्चन भी करते थे । लिङ्गोंके दो भेद होते थे । पहिला स्वयम्भूलिङ्ग कहलाता था । स्वयम्भूलिङ्ग शिवलिङ्गके समान होता था । ऐसा माना जाता था कि यह लिङ्ग दैवी प्रेरणासे स्वतः प्रादुर्भूत हुए हैं और विशिष्ट शक्तिसम्पन्न हैं तथा महासिद्धियोंके देनेवाले हैं । ऐसे कई लिङ्ग तो पहाड़ोंकी स्तूपाकार चट्टानें हैं । इनको सिन्दूरसे रंग दिया गया है । ऐसे कई स्वयम्भूलिङ्ग कश्मीरमें अब भी मिलते हैं । गणेशबल स्थानमें जो लिङ्ग है उसकी बड़ी प्रतिष्ठा है । ऐसी जनश्रुति है कि जब सिकन्दर बुतशिकन अन्य मन्दिरोंको तोड़कर इसको तोड़ने आया तो मधुमक्खियोंने निकलकर उसको और उसकी सारी सेनाको मार डाला । गणेश-घाटीके लिङ्गकी आकृति कुछ कुछ हाथीके सिरसे मिलती है ।

दूसरे प्रकारके लिङ्गको गाणपत्यलिङ्ग कहते थे। यह बीजपूर (अनार या नीबू), कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) या जम्बूफलके आकारका होता था। जहाँ मन्दिरोंमें दोनों प्रकारके लिङ्ग होते थे वहाँ स्वयम्भूलिङ्ग मन्दिरके गर्भगृहमें रहता था। उसको कोई देखने नहीं पाता था। भक्तोंको गाणपत्यलिङ्गके ही दर्शन कराये जाते थे।

दो एक और बातोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करके मैं इस अध्यायको समाप्त करता हूँ। मैंने बतलाया है कि गणपतिका बीजमन्त्र गम् है। शिवका भी बीजमन्त्र गम् है और ग अग्निका नाम है। ऐसा भी माना जाता है कि अग्निर्वै रुद्रः—अग्नि रुद्रसे अभिन्न हैं। फिर, गणेशको कई तान्त्रिक ध्यानोंमें त्रिकोणके भीतर बैठाया जाता है। तन्त्रमें त्रिकोण तैजस तत्वका प्रतीक माना जाता है। इन बातोंसे यह संकेत मिलता है कि गणपतिका शिव और तेज तत्वसे किसी प्रकारका सम्बन्ध है। उनका लिङ्ग रूपसे पूजा जाना इस विचारको दृढ़ करता है। अब गाणपत्य सम्प्रदायका लोप हो गया है। इसलिए, यद्यपि 'शंकर सुअन भवानी नन्दन' गजवदन गणपतिकी पूजा हिन्दूमात्रमें फैल गयी है, परन्तु उनको अपना एकमात्र उपास्य मानकर आराधना करनेवाले नहीं देख पड़ते।

आठवाँ अध्याय

गणपति तत्व

पिछले सात अध्यायोंमें हमने गणेशजीको अनेक रूपोंमें देखा है। वेदोंमें तो वह हमको नहीं मिले परन्तु पुराणोंमें उनका सर्वत्र चर्चा है। तन्त्रोंमें तो उनके ऐसे ऐसे विग्रह देखनेको मिलते हैं जिनके सामने चकित रह जाना पड़ता है। फिर, आज हिन्दू समाजमें घर घर उनकी पूजा हो रही है। कोई भी मङ्गलकृत्य हो, उसके आरम्भमें गणेशार्चन होना ही चाहिये। अब हम यह पूछ सकते हैं कि गणपति तत्व क्या है, गणेश कौन हैं? पुराणोंकी रचना गुप्तकालके लगभगकी मानी जाती है। कुछ तन्त्र ग्रन्थ या तन्त्र ग्रन्थोंका कुछ अंश भी लगभग उतना ही पुराना है। जब पुराणोंमें गणेशकी पूजाका विधान है तो ऐसा मानना ही चाहिये कि उनकी रचनाके पहिले यह पूजा स्थापित हो चुकी थी। अतः ऐसा मानना अयुक्त नहीं जँचता कि विक्रमकी ५ वीं या ६ वीं शती में भारत गणपतिपूजनसे परिचित था। बुद्धदेवके समयमें गणेश देवसूचीमें थे या नहीं यह कहना कठिन है। इतना ही कहा जा सकता है कि बुद्धदेवने ब्रह्मा, इन्द्र तथा कुछ और देवोंके नाम लिये हैं परन्तु गणेशका नाम नहीं लिया है। तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीरका भी प्रायः वही समय था। उन्होंने भी गणेशका नाम नहीं लिया है। प्रश्न यह है कि श्रुतिकालके पीछे और पुराण निर्माणकालके पहिले गणेशजी कहाँसे आकर देवश्रेणीमें सम्मिलित हुए? इस सीमाको और सङ्कुचित करके यों पूछा जा सकता है कि बुद्धदेवके बाद और पुराण सङ्कलनकालके बीचमें जो लगभग १००० वर्ष बीते उनमें गणेशजीका कहाँसे आर्य्य देवश्रेणीमें प्रवेश हुआ? वेदोंसे पुराणोंकी ओर आनेमें यह तो हुआ है कि कुछ देवोंका पद गिरा है, कुछका उठा है: इन्द्र, अग्नि, वरुण माण्डलिकसे बना दिये गये; अश्विद्वय तो और भी छोटे होगये; उधर विष्णु और रुद्र बहुत आगे बढ़ गये। परन्तु वैदिक वाङ्मयमें अस्तित्व न रखते हुए भी देवोंमें अग्रगण्य बन जाना गणेशजीका ही काम था। इतना ही नहीं हुआ कि गणेशजी वेदानुयाइयोंमें मान्य बनगये। पुराण कालके समुदयके पहिले ही महायान बौद्ध सम्प्रदायका विकास होगया था, गणेशजी उसमें भी स्थान पाचुके थे। यह बात नवें अध्यायमें दिखलायी गयी है।

विदेशी विद्वानोंकी राय है कि गणपति भारतके अनार्य्य निवासियोंके उपास्य हैं। मैं भी इसी परिणामपर पहुँचा हूँ। जब आर्य्यलोग ब्रह्मावर्तके बाहर बढ़े तो उनकी द्राविड़ आदि अनार्य्य जातियोंसे मुठभेड़ हुई। आर्य्य विजयी हुए परन्तु सब अनार्य्य मारे नहीं गये। कुछ तो जंगलोंमें जा बसे। उनके वंशज कोल भील हुए। कुछने, जिनकी सभ्यता पहिलेसे ही बहुत ऊँची थी, आर्य्य संस्कृतिको अपना कर अपना स्वतंत्र जीवनप्रवाह पूर्ववत् रखा। यह लोग हमको मद्रास प्रान्तमें मिलते हैं। बहुतसे अनार्य्य आर्य्य बस्तियोंमें ही रह गये। यह शूद्रोंके पूर्वज थे। संस्कारभ्रष्ट आर्य्योंने भी शूद्रोंकी संख्यावृद्धि की होगी परन्तु इनमें अधिकांश अनार्य ही होंगे। यदि ऐसा न होता तो इनका पद द्विजोंसे इतना नीचे न गिर पाता।

अपनेको सांकर्य्यसे बचानेके लिए आर्य्योंने विवाहादिके कड़े नियम तो बनाये परन्तु विचारसांकर्य्यको रोकना दुष्कर होता है। जब आर्य्यअनार्य्य एक ही बस्तीमें रहते थे, एक दूसरेसे क्रयविक्रय करते थे, आपसमें शासकशासित, स्वामीभृत्यका सम्बन्ध था, तो फिर एकके आचार विचारका दूसरेके आचार विचारपर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। अनार्य्योंने आर्य्योंसे बहुत कुछ सीखा परन्तु आर्य्योंने भी उनसे कुछ लिया। आर्य्योंके उपास्य प्रसन्न, हँसमुख, अमूर्त होते थे। वह देव, प्रकाशधर्म्मा थे; रुद्र उग्रकर्म्मा थे पर वह भी सत्कृत्यमें बाधा नहीं डालते थे। अधर्म्मके ही शत्रु थे। जैसा कि ऋग्वेदके प्रसिद्ध देवीसूक्तमें कहा है, ब्रह्मद्वेषीको मारनेके लिए ही पराशक्ति उनके धनुको उद्यत करती थी। प्रज्वलित अग्निमें हव्य डालकर उन देवोंकी पूजा होती थी। वह सत्यसंकल्प, अधर्म्मविरोधी, ऋत और सत्यके प्रपोषक होते थे। अब आर्य्योंने अपने विजित

पड़ोसियोंकी देखादेखी कुछ नये उपास्योंको अपनाया। नाग, शीतला, भैरव अनार्य्योंकी देन हैं। प्रेत, पिशाच, पशु, पक्षीकी पूजा हमने इन्हीं लोगोंसे पायी। गणेशजी भी हमको इसी प्रकार मिले हैं। इस आदान-प्रदानमें सैकड़ों वर्ष लगे होंगे परन्तु इसका होना अवश्यम्भावी था।

आर्य्योंके उपास्य स्वभावसे मनुष्यके हितैषी थे। पूजा करके उनको प्रकृत कार्य्यमें प्रवृत्त करने भरकी देर होती थी। अनार्य्यों के उपास्य सब अपदेवता, स्वभावतः दुष्ट, क्रूर, मनुष्य के शत्रु थे। कोई सोते बैठते काट खाता था, कोई रोगी करके मार डालता था, कोई किसी दूसरे प्रकारसे तंग करता था। इनकी पूजा इसलिए होती थी कि अपने स्वाभाविक सहज प्रकृतिसे विरत हो जायँ। आर्य्य अपने पुराने उपास्योंसे यह आशा रखता था कि वह उसकी सहायता करेंगे, अब उसने ऐसे नये उपास्यों को अपनाया जिनकी सबसे बड़ी कृपा यही थी कि बाधा न डालें।

गणेश इसी वर्गमें आते हैं। उनके पुराने नामने आजतक उनका पिण्ड न छोड़ा, आज भी वह विघ्नराज, विघ्नेश्वर कहलाते हैं। केवल दुष्टोंका ही दमन नहीं करते, भलेमानसोंको, सत्कर्म्मियोंको भी सुखसे नहीं बैठने देते। विष्णु आदि देवोंकी पूजा करना, सोमेश्वर या अन्य किसी शिवलिंगका दर्शन करना या पुराणका पाठ करना बुरा काम नहीं है परन्तु गणेश इनमें भी बाधा डालते हैं, एतज्जनित पुण्यका हरण कर लेते हैं। पहिले उनको तुष्ट करना पड़ता है, तब जाकर वह हटते हैं और उनकी महती विनायक सेना, जिसमें सभी प्रकारके विघ्नोंका जमाव है, शान्तिसे काम करने और पुण्य-संचय करने देती है। उनको अवैदिक, अनार्य्य, माननेके पक्षमें यह भी हेतु दिया जा सकता है कि यद्यपि आर्य्यों ने उनकी सत्ताको स्वीकार कर लिया फिर भी शुद्ध वैदिक कृत्योंमें उनका प्रवेश नहीं हो पाया। वैदिक यज्ञ अब भी पुरानी पद्धतिके अनुसार ही होते हैं, उनमें गणपतिके नाम आहुति देनेकी प्रथा नहीं है। तन्त्रका यह वाक्य भी विचारणीय है कि गणपति पौराणिक पूजापाठमें ही, जो स्पष्ट ही पीछेकी चली है, बाधा डाल सकते हैं, ब्रह्मगायत्रीके जपमें विघ्न डालना उनकी शक्तिके बाहर है। आर्य्य कितना भी नीचे झुका हो पर उसने वेदमाताकी मर्य्यादाको बिगड़ने नहीं दिया।

उनके जन्मकी कहानियाँ भी यही बतलाती हैं। प्रायः सबमें यही बात आती है कि वह शङ्करके औरस पुत्र नहीं थे, जन्म होनेके पीछे शङ्करके पुत्र माने गये। उनके पुत्रपद प्राप्त होनेके पहिले कुछ उपद्रव भी हुआ—या तो उनको देखकर देवगण क्षुब्ध हुए, या देवोंसे या स्वयं शङ्करसे लड़ाई हुई। इसका सीधा सादा आधिभौतिक अर्थ यह है कि पहिले गणेश आर्य धर्म्ममें पूज्य नहीं थे। जब इनका प्रचार बढ़ा तो शुद्ध वैदिक धर्म्मके माननेवालोंने, श्रुतिसम्मत धर्म्ममार्गपर चलनेवालोंने, इसका विरोध किया। दीर्घ कालतक झगड़ा जारी रहा परन्तु प्राचीन धर्म्मकी हार हुई, गणेशका प्रवेश मात्र नहीं हुआ वरन् उनको देवोंके बीचमें प्रतिष्ठित पद मिला। सम्भवतः गणेशपूजाका प्रचार पहिले स्त्रियों, फिर पुरुषोंमें हुआ। स्यात् इसीलिए पुराणोंमें प्रायः ऐसी कथा आती है कि उनको अकेले पार्वतीने जन्म दिया, पीछेसे शङ्करने अपना पुत्र माना।

गणेशके जन्मके सम्बन्धमें कई प्रकारकी कहानियाँ पुराणोंमें मिलती हैं। हमने इनमेंसे मुख्य कथाओंका संक्षिप्त रूप दे दिया है। एक ही देवके सम्बन्धमें कई कथाओंका होना भी इस बातका प्रमाण है कि गणेश बहुत नीचे स्तरसे उठे हैं। अनार्य्योंके पास न तो कोई श्रुतिग्रंथ था न विद्वान् पुरोहित थे। वह जिन विघ्नकारी उपद्रवी व्यक्तियोंको पूजते थे उनके सम्बन्धमें कुछ गाने, कुछ कहानियाँ, रही होंगी। लिखने पढ़नेकी व्यवस्था न होनेसे इन गाथाओंका रूप एकसा नहीं हो सकता था। कुछ समता होने पर भी प्रादेशिक भेद रहे होंगे। पुराणोंमें इनका सङ्कलन कर लिया गया। न तो सब पुराण एक समय या एक स्थानमें लिखे गये, न इनका रचयिता एक व्यक्ति था, अतः इनमें विभिन्न प्रचलित लौकिक कहानियाँ मिलती हैं। यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि रामकृष्णादि शुद्ध आर्य्य देवकल्प पुरुषोंके जन्मादिके सम्बन्धमें इस प्रकारका कथा-वैषम्य नहीं है। आज भी देवदेवियोंके विषयमें जैसी कहानियाँ जनसाधारणमें प्रचलित हैं उनका संग्रह करनेसे यही विलक्षणता देख पड़ेगी।

अपनी विजययात्रामें आर्य्योंको नये रोगों, नयी बाधाओंका सामना करना पड़ा। उन्होंने यह भी देखा कि इन प्रदेशोंके आदिम निवासी इन बाधाओंके उपशमके लिए कई प्रकारके उपचार करते हैं। फलतः धीरे धीरे निम्नकोटिके अशिक्षित आर्य्योंमें यह पूजाएँ चल पड़ीं। विद्वानोंने विरोध किया होगा परन्तु उनको सफलता न मिल सकी। उधर जो अनार्य्य आर्य्य बस्तियोंमें रह गये उन्होंने आर्य्योंके देवगणको तो अपना लिया परन्तु अपने पुराने देवोंको न छोड़ सके। हम इस समय भारतमें इन दोनों प्रवृत्तियोंके दृष्टान्त पाते हैं। एक ओर हिन्दू ग़ाज़ीमियाँ और ताजियाको पूजते हैं, दूसरी ओर ईसाई हो जाने पर भी डोम, गोंड और दूसरे अशिक्षित समुदाय अपनी शीतला और भैरव मसानको नहीं छोड़ पाते। विद्वान् हिन्दू और ईसाई इन बातोंसे अलग रहते हैं परन्तु विद्वानोंकी संख्या कम होती है। साधारण जनताका दबाव बड़े लोगों पर भी पड़ता है। बड़े बड़े हिंदू नरेश ताजिये बैठाते हैं और उनके ब्राह्मण क्षत्रिय सामन्त भी ताजियोंके जलूसमें सम्मिलित होते हैं। यदि कुछ मुसलमान बादशाहोंने उत्पीड़न नीति न बरती होती तो सम्भवतः हसन हुसैन भी हिन्दू देवोंमें गिन लिये जाते। अस्तु, धर्म्माचार्य्योंकी उपेक्षा और सक्रिय विरोधके होते हुए भी धीरे धीरे विनायक पूजा आर्य्यसमाजमें बढ़ी और फैली। उसके प्रचारमें एक सुविधा भी थी। आर्य्य दैत्य, असुर, राक्षस, यातुधान जैसे विघ्नकारियोंकी सत्ता पहिलेसे मानते थे। इसलिए नये विघ्नकारियोंकी सत्ताको स्वीकार करनेमें कोई विशेष कठिनाई नहीं थी। सब अपदेवताओंको किसीने आँखसे देखा तो था ही नहीं। जहाँ असुरादि अदृश्यरूपसे रह सकते हैं वहाँ विनायक, भैरव, शीतलाका होना भी असम्भव नहीं है। दोनोंके शमनका उपाय कर लेनेमें कोई बुराई नहीं थी, लाभकी ही सम्भावना थी। एक अन्तर था, पर वह इन नये लोगों के पक्षमें था। असुरादि अपनी दुष्टता कभी नही छोड़ते थे। वेदोंमें ऐसी प्रक्रियाएँ दी हुई थीं जिनसे उनको दूर भगाया जा सकता था। विनायकादिमें यह अच्छाई थी कि पूजा करनेसे प्रसन्न होकर यह अपनी दुष्टता छोड़ देते थे। यदि मङ्गल कार्य्यके आरम्भमें पूजा कर लेनेसे विघ्नकी आशङ्का दूर हो जाय तो सहज प्रवृत्ति यही होगी कि ऐसी पूजाकर ली जाय। यहाँ पर महानिर्वाण तन्त्रमें दी हुई गुरुदीक्षा पद्धति विचारणीय है। उसमें मूलकृत्यके एक दिन पहिले गणेश और कुछ दूसरे देवोंकी पूजा की जाती है परन्तु और देव तो रह जाते हैं गणेशको 'विघ्नराज क्षमस्व' कहकर विसर्जित कर दिया जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि हमने आपका शुल्क दे दिया, अब आपका कोई काम नहीं है, जाइये, काममें बाधा मत डालिएगा। यहाँ उनका काम मङ्गल करना नहीं, प्रत्युत अमङ्गल न करना है। क्रमशः जब हर शुभ काममें विनायक-शान्तिकी प्रथा पड़ गयी तो गणेशार्चन पूजाका अनिवार्य्य अंग बन गया और जो पहिले विघ्नकर्ता था और पूजा करके अमङ्गल-अकर्ता बनाया जाता था वह धीरे धीरे विघ्नहर्ता और मङ्गलकर्ता बन गया।

गणेशके जो नाम यौगिक हैं अर्थात् उनके गुणोंके प्रज्ञापनके लिए बनाये गये हैं वह तो विद्वदोचित हैं। शङ्करसुत, गजवक्त्र, अमोघ, त्रिलोचन, भक्ष्यप्रिय, आखुरथ इसी कोटिके नाम हैं। परन्तु कुछ नाम ऐसे भी हैं जो उस अवस्थाका परिचय देते हैं जिसमें गणेशजीका उदय हुआ था। हरिद्रा (हल्दी) गणपति, पिङ्गल (पीले) गणपति, उच्छिष्ट (जूठे) गणपति लौकिक और प्रादेशिक हैं। विनायकोंमेंसे एकका नाम कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) है। यह भी गँवारू शब्द है। शालकटङ्कट और पिचिण्डिल तो सर्वथा अनार्य प्रतीत होते हैं। काशीके पुराणप्रसिद्ध गणेशका नाम ढुण्ढि है। यह भी प्राकृत शब्द है। महाभारतमें शालकटकटा राक्षसीका नाम आता है। शालकटङ्कट उससे बहुत मिलता है।

आर्य देवपरिवारमें विनायक बलात् घुस तो आये परन्तु यहाँ आकर उनका बहुत कुछ कायापलट हो गया। विघ्नोंकी संख्या नहीं हो सकती। जीवनमें पदे पदे बाधाओंका सामना होता है। इसलिए विनायकोंको असंख्य कहा गया है। फिर हर गाँव, स्यात् हर जाति, हर टोलीका अपना पृथक् विनायक रहा होगा। आज भी हर गाँवके डीह या ग्रामदेव अलग होते हैं। वाराह पुराणमें लिखा ही है कि विनायकोंकी अपार सेना देखकर देवगण क्षुब्ध हो उठे। यदि इन सबकी पूजा करनी होती तो तैंतीस देवोंकी पूजाके लिए अवकाश ही न मिलता। इसलिए पहिले तो इन विनायकोंमेंसे चार चुन लिये गये। सम्भवतः इनका अनार्य जगत्में व्यापक प्रचार रहा होगा। विघ्नकर्ताओंमें मित, सम्मित, कूष्माण्ड

और शालकटङ्कट प्रमुख मान लिये गये। और आगे बढ़कर विनायक शब्दका एक वचनान्त प्रयोग होने लगा। यह नहीं कि इन चारोंमेंसे किसी एकको मुख्य स्थान दिया गया वरन् चारोंको मिलाकर एक विग्रह कर दिया गया। चारकी स्मृति बनी रही, किसी किसी विशेष अवसरपर चारों नाम अलग अलग लिये जाते हैं परन्तु बहुधा एक विनायक, एक गणपतिकी सत्ता स्वीकार की जाती है। पुराणके स्पष्ट शब्दोंके अनुसार सब विनायक एक दूसरेसे पृथक् हैं परन्तु अर्वाचीन विश्वास यही है कि विनायक एक हैं, वह विशेष अवस्थाओंमें विशेष रूपोंसे व्यक्त होते हैं। हेरम्बादि गणपति भी इस महागणपति या मुख्य विनायकके भेद या अभिव्यक्ति माने जाते हैं।

विनायकके शरीरमें भी काट-छाँट हुई। सम्भवतः अनार्योंमें जिन विनायकोंकी पूजा होती थी उनका सिर हाथी जैसा माना जाता था परन्तु सर्वत्र एक सा विग्रह नहीं था। पीछेसे जब विनायक एक हुए तो मूर्ति भी एक सी करनी पड़ी। इस सम्बन्धमें सूँड और दाँतसे सम्बन्ध रखनेवाली कथाओंको देखिये। प्रायः सबमें यह बात आती है कि सूँड पीछे से जोड़ा गया। एक कथामें सूँडसमेत जन्म माना भी गया है तो पाँच सूँडोंमेंसे चारको काटना पड़ा है। दाँत भी पहले दो थे, फिर एक रह गया। आर्य देवगण मनुष्यकी आकृतिवाले समझे जाते थे। इन कहानियोंमें सैकड़ों वर्षोंका इतिहास छिपा पड़ा है। मानवाकृति आर्य देवोंके बीचमें एक गजमुख देव आ बैठा। बहुत विरोधके बाद आर्य बुद्धिने देवके कन्धेपर पशुके सिरका होना स्वीकार किया। जब उसको अस्वीकार करना शक्तिके बाहर हो गया तो मान लेना पड़ा। कहीं एक सिरवाला हाथी पुजता था, कहीं अनेक सिरोंवाला, कहीं काला, कहीं गोरा, कहीं लाल; कहीं दो दाँत थे, कहीं एक। आर्य्य पण्डितोंने इन सबको मिला-जुलाकर उस विग्रहको मान लिया होगा जिसका प्रचार सबसे अधिक था। दूसरोंकी भी स्मृति अवशिष्ट रह गयी है और अङ्गोंकी विलक्षणताके लिए या तो कहानियाँ गढ़ ली गयी हैं या लोकमें प्रचलित कहानियोंको ही कुछ बदलकर मान लिया गया है।

शरीरके साथ साथ उनके स्वभावका भी संस्कार हुआ। विघ्नकर्ता तो वह अब भी रह गये परन्तु उनके चरित्रके इस पहलूकी ओर से यथाशक्य दृष्टि फेर ली गयी और अमङ्गल-अकर्ता ही नहीं प्रत्युत मङ्गलकर्ताके रूपमें उसको सामने लाया गया। आर्य्यधर्म्म प्रसन्नवदन, मानवहितैषी, धर्म्मप्रोत्साहक देवोंको ही जानता है। इसलिए जब गणेशजी आर्य्यदेव बने तो उनकी शुद्धि हुई। वह अपने असिद्धिकर प्रवृत्तिको भुलाकर सिद्धिदाता बननेमें यत्नशील हुए। उनके सैनिक चाहे कैसे भी क्रूराकृति और क्रूरकर्म्मा हों परन्तु गणपति सदा प्रसन्नवदन, हँसते रहते हैं। उनके बहुतसे दुष्कृत्योंपर पर्दा पड़ गया है। लोग यह तो जानते हैं कि वह कल्याण करते हैं, सुखसमृद्धि दिया देते हैं परन्तु इसका पता बहुत कम लोगोंको है कि यदि पहिले उनको न मनाया जाय तो पूजापाठका पुण्य चुरा लेते हैं। सैकड़ों वर्षोंमें लोकबुद्धि ने उनके अपदेवता रूपको वैदिकदेवके साँचेमें ढालनेमें महती सफलता प्राप्त कर ली है। संस्कृत ग्रन्थों में जो मङ्गलाचरण दिये रहते हैं उनमें तो बिनायकका नाम या कर्म्म के द्वारा स्मरण हो भी आता है परन्तु तुलसीदासजीने विनयपत्रिकाके प्रसिद्ध पद 'गाइये गणपति जगबन्दन, शङ्कर सुअन भवानी नन्दन' में इसका कहीं छींटा भी नहीं आने दिया है। उनके गणेश पूर्णतया मङ्गलमूर्ति, मङ्गलकर्ता हैं।

श्रुति कहती है त्रयस्त्रिंशत् वै देवाः—देवगण तैंतीस ही हैं। इसलिए जबतक हिंदू किसी उपास्यको इस त्रयस्त्रिंशत् श्रेणीके भीतर नहीं ला देता तबतक उसको शान्ति नहीं होती। अशिक्षित जनसाधारणको तो चाहे इसकी विशेष चिन्ता न हो, परन्तु विद्वत्समाजको, जिसके ऊपर धर्म्मके संयमनका दायित्व है, क्षोभ होता ही है। जब विनायक भीतर आ ही गये तो उनको कहीं न कहीं स्थान देना था। वह क्रूरकर्म्मा थे, उनकी पूजा डरसे की जाती थी, प्रेमसे नहीं। इसलिए उनको उग्र स्वभाववाले रुद्रके गणोंमें स्थान दिया गया। यही बात पुराणोंमें इस रूपसे कही गयी है कि वह रुद्रके पुत्र बने। रुद्रसेनामें बहुत जगह थी। शुक्ल यजुर्वेदके १६वें अध्यायके ५४वें मन्त्रको देखिये। वह कहता है कि 'असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्' (पृथिवीपर जो असंख्य सहस्र रुद्र हैं) उनके धनुओं (अस्त्रों) को हम अवतरित करते हैं। फिर ५५वेंसे

लेकर ६२वें मन्त्रतक अन्तरिक्षादिमें विचरनेवाले रुद्रोंका उल्लेख है। इसके बाद ६३वां मन्त्र 'य एतावन्तश्च भूयासश्च'—यह सब और इनके अतिरिक्त और बहुतसे—रुद्रोंकी ओर सङ्केत करता है। इस अपार और असङ्ख्य सेनामें विनायक सुगमतासे खप सकते थे। रुद्र संहारकारी, तमोगुणके अधिष्ठाता, देव हैं। वह अनेक प्रकारसे लोगोंके कर्म्मानुसार संहार करते हैं। ६२वां मन्त्र उन रुद्रोंका निर्देश करता है—'येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्'—जो अन्नोंके भीतर बैठकर और जलादि पीनेके पात्रोंमें बैठकर खानेपीनेवालोंको भाँति भाँतिसे रोगादिके रूपमें दुःख देते हैं। इस मण्डलीमें विनायकोंका स्थान बना बनाया था। यह बात सुगमतासे मानी जा सकती थी कि वह भी इन असङ्ख्य रुद्रोंमें से हैं। एकही कठिनाई थी। विनायकोंको सत्कार्यमें भी बाधा डालनेकी टेव थी परन्तु जहाँतक हो सका पण्डितसमुदायने इस स्वभावदोषपर पर्दा डाला। फलतः विनायक पहिले तो रुद्रके गणोंमें परिगणित हुए, फिर रुद्रके पुत्र, रुद्रके अंशावतार, रुद्रकी अभिव्यक्ति बनते चले गये। ई गौण बातें भी इस एकीकरणमें सहायक हुई होंगी। लौकिक गणेशका चूहेसे किसी प्रकारका सम्बन्ध है। कहानियोंसे ऐसा जान पड़ता था कि चूहा उनके पास पहिले न था, पीछेसे मिला। उधर यजुर्वेदका एक मन्त्र, जिसे हम उद्धृत कर चुके हैं, चूहेको रुद्रका पशु कहता है। यह भी एक सम्बन्धसूत्र है। नामोंकी समताने भी काम दिया होगा। शङ्करका नाम भी गणेश है। वाल्मीकि रामायणमें उनको 'गणेशो लोकशम्भुश्च लोकपालो महाभुजः। महाभागो महाशूली महादंष्ट्री महेश्वरः।' कहा है। कलकत्तेके इण्डियन म्यूज़ियममें कुषाणवंशीय सम्राट् हुविष्कका, जिसका शासनकाल सं० ९३ से १२३ वि० था, तांबेका एक सिक्का है, जिसपर एक ओर तो हुविष्कका चित्र है, दूसरी ओर एक योद्धा बना है जिसके दाहिने हाथमें आचूड़ान्त लम्बा धनुष है। उसका नाम पुराने ब्राह्मी अक्षरोंमें 'गणेश' अंकित है। यह आकृति शङ्करकी ही हो सकती है क्योंकि इस साथके अन्य सिक्कोंपर योद्धाके हाथमें त्रिशूल जैसे रुद्रायुध हैं और एकपर यवनाक्षरोंमें ओएशो (भवेश) नाम भी लिखा है। शङ्करके आयुधोंमें धनुर्बाणका मुख्य स्थान है। धन्वी, पिनाकी उनके प्रसिद्ध नाम हैं। इस सिक्केका चित्र विंसेण्टस्मिथके कैटलॉग आव काएंस इन दि इंडियन म्यूज़ियम-भाग १ फलक १३ में दिया है।

जिस समय विनायकने देवपद प्राप्तिका उपक्रम किया उस समयतक मन्त्रद्रष्टा ऋषि उठ चुके थे। उनको वेदमें अपने लिए मन्त्र न मिल सके परन्तु मन्त्रके बिना देवपूजा होती कैसे? लौकिक संस्कृतमें श्लोक बन सकते थे और बने भी, परन्तु वेदमन्त्रोंका अभाव खटकता था, इसलिए वह सब मन्त्र जिनमें 'गणपति' शब्द आता है गणेशजीको दे दिये गये। स्वयं वेदने कहीं ऐसा आदेश नहीं दिया है, श्रौतसूत्रकालतक भी ऐसा नहीं माना जाता था कि श्रुतिका गणपति शब्द गणेशवाची है। ऋग्वेदके जिस मन्त्रको हमने पहिले अध्यायमें अवतरित किया है उसमेंका गणपति ब्रह्मणस्पति (बृहस्पति) है। यदि यह मान भी लिया जाय, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, कि गणेशजी ही बृहताम् पति, वाणीके पति, मन्त्रोंके पति हैं और उनका ही वैदिक नाम ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति है तब भी यजुर्वेदके अश्वमेधाध्यायमें तो किसी भी प्रकार गणेशजीका प्रसङ्ग नहीं माना जा सकता। अश्वको गणेश या गणेशको अश्व मानना अनर्थ होगा। इसलिए गणानान्त्वावाला मन्त्र जो गणेशपरक माना जाता है उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। फिर भी गणपति शब्दके आधारपर यह दो तीन मन्त्र गणेशजीको मिल गये। उनके नामपर गायत्री छन्दमें एक छोटा सा मन्त्र भी बन गया और पीछेकी बनी गणपत्युपनिषत्में डाल दिया गया।

देवत्व प्राप्त करके गणेशजीने बहुत आध्यात्मिक उन्नति की। वैदिक देवगण देवताओं, जगत्की सञ्चालक शक्तियों, आद्याचिच्छक्ति, के भेदों के प्रतीक, प्रतिबिम्ब, घनीभूत, विग्रह होते हैं। पराशक्ति जहाँ कल्याणकारिणी है वहाँ अकल्याणकरी भी प्रतीत होती है। सुकृतियोंके घरमें भी कभी अलक्ष्मी बनकर निवास करती है। वही विद्या है और वही अविद्या है। वही तामसी और वही सत्वमयी है। वही मोहिनी और वही मोहहन्त्री है। कर्मवशात् जीवको उसके माङ्गलिक और अमाङ्गलिक दोनों प्रकारके रूपोंका साक्षात्कार होता है। इसलिए तन्त्रमें विघ्नको भी देवता—ईश्वरीका भेदविशेष—कहा है। इस विघ्नदेवताके मूर्तविग्रह गणपति हैं। गणपतिपूजनके द्वारा उस परमेश्वरीका ही पूजन होता है। जब साधक दत्तचित्त होकर उपासना करता है तो उसके चित्तकी वृत्ति शुद्ध होती है, देवता अपने विघ्नरूपको सिद्धिरूपमें परिणत कर लेती है,

अविद्याकी जगह विद्याका उदय होता है। मनोविज्ञानका यह अनुभूत सिद्धान्त है कि जो बौद्धिक शक्ति दुर्वृत्तियोंमें नष्ट होती रहती है वह उन्नीत होकर सद्वृत्तियोंको पुष्ट करती है। सत्वगुणका अंकुश देकर काम और क्रोधको कल्याणका साधन बनाया जा सकता है। इसीलिए मातृकाओंकी जो काम, क्रोध, असूया आदि दुर्गुणोंकी प्रतीक हैं पूजा होती है और विघ्नराज-की उपासना की जाती है। तान्त्रिक पूजाका यही आध्यात्मिक रहस्य है। तन्त्रमें जो भौतिक मकारोंका उपयोग होता है उसके सम्बन्धमें यहाँ विचार करना अप्रासङ्गिक होगा परन्तु यह द्रष्टव्य है कि यजुर्वेदका जो मन्त्र गणपतिविषयक माना जाता है वह जिस प्रसङ्गमें आया है उसमें यजमानकी पत्नी मृत अश्वको पतिरूपमें आहूत करती है।

अनार्य्य विनायकसे आर्य गणपति, विघ्नराजसे सिद्धिदाता, बननेमें गणेशजी वेदान्त और तन्त्र शास्त्रके चरम सिद्धान्तोंकी प्रतिमा बन गये। वेद कहता है सदेवसोम्य इदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्'—हे सोम्य, आरम्भमें केवल एक, अद्वय, सत्पदार्थ था। यही बात अनेक प्रकारसे दर्शन ग्रंथों और पुराणोंमें कही गयी है। सप्तशतीमें देवी कहती हैं 'एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा'—इस जगत्‌में मैं अकेली हूँ, मेरे सिवा और दूसरा कौन है। तब फिर जो भी विघ्न-बाधा उपस्थित होती है वह उस आद्या शक्ति, उस परम सदाशिव तत्त्वसे भिन्न नहीं हो सकती। जैसे पीतज्वरके रोगीको सब पीला देख पड़ता है इसी प्रकार दुर्बल, अल्पबुद्धि, मोहादिग्रस्त प्राणीको पदे पदे विघ्नोंका अनुभव होता है। अल्पवीर्य्य, अल्पमेधा होनेसे वह सत्कार्य्योंको भी निर्बाध गतिसे नहीं कर सकता। परन्तु उपासनाके प्रसादसे मोहजनित आवरण हट जाता है, बाधक साधक बन जाता है और सन्मार्गपर चलनेकी सामर्थ्य उपलब्ध होती है। अपनी जो मानस शक्ति इधर उधर बिखरी फिरती थी वह अच्छे काममें लगायी जा सकती है। सप्तशतीके मध्यम चरित्रमें महिषासुरके वधकी कथा है। महिषासुर महामोहका प्रतीक था। उसके साथ चित्तकी दुर्दम वासनाओंके मूर्त रूप थे। वह देवगणके, जगत्‌की सञ्चालक श्रेष्ठ सात्विक शक्तियोंके, मार्गमें बाधक हो रहे थे। पराशक्तिने उनका वध किया परन्तु वधके उपरान्त वह नरक नहीं गये, निकम्मे नहीं कर दिये गये। बधका उद्देश्य यह था कि 'लोकान् प्रयान्तु' रिपवोऽपि हि शस्त्रपूताः'—शस्त्राघातसे पवित्र होकर शत्रु भी उत्तम लोकोंको प्राप्त हों। महिषादि भी इन्द्रादिके समान स्वर्लोकके निवासी हुए। उपासनाके द्वारा इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपने भीतर आध्यात्मिक शक्तिको जगा सकता है और उसकी सहायतासे कुप्रवृत्तियोंका मर्दन करके उनको सुप्रवृत्तियोंमें परिणत कर सकता है, नीचे गिरानेवाली बलवती प्रेरणाओंको उतनी ही बलवती ऊपर उठानेवाली प्रेरणाओंका स्वरूप दे सकता है। फिर कु और सु का कृत्रिम भेद मिटकर केवल एक भेदातीत स्फूर्तिशक्ति अवशिष्ट रह जायगी। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि जब लोकबुद्धिने विघ्नराज विनायकको अपना ही लिया, सत्कार्य्योंमें बाधा न डालनेके लिए शान्ति करते करते हर मंगल कृत्यमें उनकी पूजा करनेकी प्रथा चल ही पड़ी, तो विद्वत् समाजने विरोध करना व्यर्थ समझकर अपने इस बेडौल अतिथिका मार्जन और संस्कार करके शास्त्रसम्मत इस अद्वैतमूलक सिद्धान्तके अनुकूल उनका कायाकल्प किया। लौकिक रूढ़ियोंसे पीछा छुड़ाना कठिन था, फिर भी इसका यथाशक्य यत्न किया गया और विघ्नेश्वरको विघ्नहन्ताका रूप देकर उभय विग्रहका शुद्ध चिन्मय ब्रह्मसे अभेद प्रतिपादित किया गया। महेश्वरका उपासक वेदके शब्दोंमें उनसे कहता है 'या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी'—हे रुद्र, तुम्हारा जो कल्याणमय, अघोर, पापनाशक शरीर है—उसको मुझपर प्रकट करो। गणेश और महादेवका पुत्र और पिताके रूपमें समीकरण करनेसे उनके भी घोर और अघोर, विघ्नकारी और विघ्नहारी, शरीरोंका होना स्वाभाविक सा प्रतीत होने लगता है।

तन्त्रके पण्डित भी ऐसा मानते हैं कि जो तत्व आध्यात्मिक उन्नतिमें स्वतः बाधक होता है वह उपासनाके द्वारा सहायक बनाया जा सकता है। इसी आधारपर वह पशुसाधकको, ऐसे साधकको जो वैराग्यादि सात्विक सम्पत्‌से युक्त नहीं है, मद्यमांसादि पञ्च मकार सेवन करनेकी अनुमति देते हैं। उनका कड़ा आदेश रहता है कि उपासना पद्धतिके बाहर इन वस्तुओंसे सम्पर्क न रखा जाय। उनका ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार संयमका अभ्यास दृढ़ होता है और उपासनाके मुख्य अंग मन्त्र जपसे जिस अपूर्व शक्तिका सञ्चय होता है वह इन स्वभावतः हेय वस्तुओंकी हेयताको दूर करके इनको

उपादेय बना देती है। भावनाद्वैतके फलस्वरूप द्रव्याद्वैत बुद्धिका उदय होता है और साधक हेय-उपादेयके ऊपर उठकर अखण्ड चित्तत्त्वका साक्षात्कार करता है। उसको यह विभूति प्राप्त हो जाती है कि जो देवता अनिष्टकारी हैं अर्थात् जो शक्तियाँ साधारण व्यवहारमें मनुष्यके लिए हानिकर हैं उनको वह इष्टकारी, मनुष्यके लिए हितकारी बना लेता है। विघ्नदेवताका स्वरूप साधनाके प्रतापसे सिद्धिदेवता हो जाता है, क्योंकि परमार्थतः विघ्न और सिद्धि, अविद्या और विद्या, एक ही परा देवताके अविच्छेद्य रूप हैं। मेरा विश्वास है कि इन धारणाओं से गणेशजीके विकासक्रममें सहायता ली गयी होगी।

इस सम्बन्धमें श्री भगवान्दासजीने (बृहत्) मानवधर्मसारमें यह विचार प्रकट किया है; 'प्राचीनेनार्यवैदिक समाजेन पराजित बर्बरनिषादादि जातीः स्वसमाजव्यवस्थायां यथास्थानं निवेशयितुं, मैत्रीबुद्ध्या च सान्त्वयितुं तासां काश्चिद् बहुपूजिता देवताः तदर्चनप्रकाराणामंशांश्च कांश्चित् यथाशक्यं परिष्कृत्यानुमेनिरे आध्यात्मिकैरर्थैश्चापि तासां जातीनां क्रमशः उद्बोधनाय चोत्कर्षणाय च ता देवताश्च तानर्चप्रकारांश्च युयुजिरे'—अर्थात् प्राचीन आर्य्य वैदिक समाजने पराजित बर्बरान-निषादादि जातियोंका अपनी समाज व्यवस्थामें यथास्थान निवेश करने और मैत्रीबुद्धिसे उनकी सान्त्वना करनेके उद्देश्यसे उनकी किसी किसी बहुपूजित देवता और उसकी पूजाके प्रकारके किसी किसी अंशको यथाशक्य परिष्कार करके मान लिया और उन जातियोंके उद्बोधन और उत्कर्षणके लिए उन देवताओं और अर्चन प्रकारोंको क्रमशः आध्यात्मिक अर्थ पहिना दिया।

यह विचार मेरे मतसे कई अंशोंमें मिलता है। मुख्य भेद यह है कि इसके अनुसार आर्य्य वैदिक समाजने गणपति जैसे देवोंको बुद्धिपूर्वक अपनी देवसूचीमें मिलाया परन्तु मैं ऐसा मानता हूँ कि आरम्भ में आर्य्य अनार्य्यके संसर्गसे विनायकके रूपमें वह बरबस आ मिले, पीछेसे उनका परिष्कार करना पड़ा।

श्रुति कहती है 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' वह परतत्व एक है, विद्वज्जन उसे अनेक नामोंसे पुकारते हैं। अपनी शुद्ध अवस्थामें वह अखण्ड, विद्घन, एकरस, नेति नेतीति-वाच्य ब्रह्म है। मायाशबल होनेपर उसीको परमात्मा या ईश्वर कहते हैं। ईश्वरको कोई साधक ब्रह्मा, कोई विष्णु, कोई शिव, कोई ईशानी कहता है। गाणपत्य उपासक परमात्माको महागणाधिपति नामसे पुकारता है ओर गणपति तत्वको ब्रह्मसे अभिन्न मानता है। गणेशपुराणके उपासनाखण्डमें दिये हुए गणेशाष्टकका यह श्लोक है:—

यतश्चाविरासीज्जगत्सर्वमेतत्तथाब्जासनो विश्वगो विश्वगोप्ता।
तथेन्द्रादयो देवसंघा मनुष्याः सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

[हम सदा उस गणेशको प्रणाम करते और भजन करते हैं जिसमेंसे यह सारा जगत्, ब्रह्मा, बिष्णु, शिव, इन्द्र आदि देवसङ्घ तथा मनुष्य आविर्भूत हुए।]

इसी प्रकार एकदन्त स्तोत्रमें कहते हैं:—

सदात्मरूपं सकलादिभूतममायिनं सोऽहमचिन्त्यबोधम्।
अनादिमध्यान्तविहीनमेकं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥
विश्वादिभूतं हृदि योगिनां वै प्रत्यक्षरूपेण विभान्तमेकं।
सदा निरालम्बसमाधिगम्यं तमेकदन्तं शरणं व्रजामः॥

[हम उन एकदन्तके शरणमें जाते हैं जो सदा आत्मरूप हैं, सबके आदि तत्व हैं, मायारहित हैं, सोऽहम्-बोधस्वरूप और चित्तके परे हैं, आदि मध्य और अन्त विहीन हैं तथा एक हैं।

हम उन एकदन्तके शरणमें जाते हैं जो विश्वके आदिभूत हैं, एक हैं, जिनका प्रकाश प्रत्यक्षरूपसे योगियोंके हृदयमें होता है, जो सदा निरालम्बसमाधिगम्य हैं।]

गणेशजीके हाथमें जो आयुध दिये रहते हैं उनसे भी इस विषयपर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। बहुधा उनके पास पाश और अङ्कुश रहता है। पाश मोह, तमोगुणका चिह्न और अंकुश प्रवृत्ति, रजोगुणका चिह्न माना जाता है। अन्य

देवविग्रहोंमें भी इनको इसी दृष्टिसे देते हैं। मोदकका अर्थ है मोद (आनन्द) करने (देने) वाला। सम्भव है उसका स्थान वही हो जो देवीकी चतुर्भुज मूर्तिमें वरमुद्राका होता है, अर्थात् वह सत्त्वगुणका प्रतीक हो। यदि यह मीमांसा ठीक है तो ऐसा मानना होगा कि इस प्रकार उनको पीछेसे विभूषित किया गया। मदिरासे भरा पात्र मोह, अज्ञान, तमोगुण, विघ्नका प्रतीक भी हो सकता है परन्तु यह भी सम्भव है कि उसके द्वारा उस कालकी स्मृति सुरक्षित हो जब गणेशजीके अनार्य्य बर्बर भक्त मदिराका अर्घ्य देकर उनको तुष्ट करते थे।

गणेशजीके नामके अर्थ लगानेमें भी विद्वानोंने बहुत चातुर्य्य दिखलाया है। उदाहरणके लिए यह श्लोक देखिए——

ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाण वाचकः।
तयोरीशं परं ब्रह्म, गणेशं प्रणमाम्यहम्॥

[ग ज्ञानार्थवाचक और ण निर्वाणवाचक है। इस प्रकार ज्ञाननिर्वाणवाचक गणके ईश परंब्रह्म हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।]

रुद्रसे सारूप्य प्राप्त करके गणेशजीका लिङ्गरूपसे पूजित होना स्वाभाविक था। गणपतिलिङ्ग बीजपूरकी आकृति का होता है। बीजपूर अनार या बिजौरिया नीबूको कहते हैं। दोनों ही फल बीजसे भरे होते हैं, अनारमें तो बीज बहुत होते हैं। बीजोंका नानात्व विघ्नोंके नानात्वका प्रतीक है और सिद्धियोंके नानात्वका भी। कुछ लोग उसको सर्जन शक्ति, उर्वरात्व-का चिन्ह मानते हैं।

गणेशजीका शरीर ऐसा है कि वह अपनी ओर सभी विचारकोंको आकृष्ट करता है। ऐसा विचार उठता है कि अङ्गोंके इस अप्राकृतिक गठनका कोई गम्भीर अर्थ होगा।

श्री भगवान्दासने समन्वयमें श्री चम्पतराय जैनकी निरुक्ति अवतरितकी है। चम्परायजीके अनुसार चूहा विवेचक, विभाजक, भेदकारक, विस्तारक, विश्लेषक बुद्धि है। गणेशजीका सिर कटना अहङ्कारका नाश होना है और हाथीका सिर लगना संयोजक, समाहारक, समन्वयकारक, संश्लेपक बुद्धिका उदय होना है। ज्ञान और तन्मूलक व्यवहारके लिए सामान्य और विशेष दोनोंका परिचय आवश्यक है, विभाजक और समाहारक दोनों प्रकारकी बुद्धि चाहिए परन्तु प्रधानता समन्वयबुद्धिकी ही है इसीलिए गजवदनजी चूहेपर सवारी करते हैं। इस संश्लेषक बुद्धिके कारण ही गणेशजी बुद्धिसागर माने जाते हैं। गणेशजीकी एकदन्तता उनकी अद्वैतप्रियताकी सूचक है और लम्बोदर कहलानेका यह तात्पर्य्य है कि अनेक ब्रह्माण्ड उनके उदरमें हैं। उनको मोदकप्रिय होना ही चाहिये। मोदकका अर्थ है आनन्ददेनेवाला। मोदक ब्रह्मानन्दका नाम है।

मुझे इस प्रकारकी निरुक्तिके सम्बन्धमें इतना ही कहना है कि जो विद्वान इनको पेश करते हैं उनका यदि यह मत हो कि इन बातोंको सोचकर गणेशजीके विग्रहकी कल्पना की गयी तब तो मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। गणेशजीके कई ऐसे ध्यान हैं जिनमें विद्वानोंने आध्यात्मिक तत्वोंके प्रतीकस्वरूप आयुधादिसे उन्हें सज्जित किया है परन्तु उनका मूलरूप——सूँड, टूटा दाँत, स्थूल पेट—विद्वानोंका दिया हुआ नहीं है। यह तो गणेशजीके बर्बर और व्रात्य उपासकोंकी उपज है। विनायक-कालमें गणेशजीका यही रूप था, विद्वानोंने बहुत काट छाँट की, बहुत कुछ अपनी ओरसे मिलाया परन्तु पुरानी बातोंसे पूर्ण-तया पीछा न छूटा। विघ्नकारी प्रकृति और बेडौल शरीरके कुछ संस्मरण रह ही गये।

मैंने ऊपर एक जगह दिखलाया है कि यजुर्वेदमें एक मन्त्रमें रुद्र और उनकी स्वसा (बहिन) अम्बिकाका साथ साथ उल्लेख है और वहीं आखु (चूहे) को रुद्रका पशु कहा है। अम्बिका रुद्रकी शक्ति है, इसलिए रुद्रकी पत्नी कहलाती है। पुराणोंमें यही रूप सामने आता है। परन्तु शक्ति और शक्तिमान, परमात्मा और आद्या, शिव और शक्तिका अभेद है। दोनों सदा एक साथ हैं, उनमें अविनासम्बन्ध है, एकके बिना दूसरेकी सत्ता अचिन्त्य है। इसलिए श्रुतिने उनको भाई बहिन कहा है। संसारी जीवको पशु कहते हैं, इसीलिए विद्याके स्वामी शङ्करको पशुपति कहते हैं। हो सकता है कि चूहा इस लौकिक

बुद्धिवाले जीवका प्रतीक मानकर रुद्रका पशु कहा गया हो। उसकी चपलता और भोगलोलुपता प्रसिद्ध ही है। वह रातमें निकलता है और रातसे मोह, अज्ञानको उपमा दी जाती है। यह भी चूहेको अज्ञानी जीवसे समता दिलानेवाली बात है। यह कहना कठिन है कि अनार्य्य विनायकका वाहन चूहा था या नहीं। मेरा तो विश्वास है कि ऐसा ही रहा होगा पर यह भी हो सकता है कि रुद्रत्व प्राप्त करनेपर उनको चूहा मिला हो। उभयतः यह बात हो सकती है कि चूहा मोहावृत जीवका और गणेश विद्यात्मक ईशतत्वके प्रतीक बन गये हों।

साधकको इस बातका पूरा अधिकार है कि वह अपने उपास्यको ऊँचेसे ऊँचे आध्यात्मिक आसनपर बैठाये और उनको सब गुणोंका निधान माने। तभी श्रद्धाके साथ उपासना हो सकती है। विद्वानोंको भी एवम्भूत निरुक्ति करके बुद्धिवैभव दिखलानेका अवसर मिलता है और स्थूल तत्व सूक्ष्म बनाये जाते हैं। परन्तु इन बातोंसे ऐतिहासिक तथ्योंपर पर्दा न पड़ना चाहिये।

नवाँ अध्याय

बौद्ध तथा जैन धर्म्म में विनायक

सातवें अध्यायमें तन्त्र और महायान बौद्ध सम्प्रदायके सम्बन्धमें कुछ लिखा जा चुका है। उसका यह तात्पर्य्य नहीं है कि तान्त्रिक उपासनाशैलीको बौद्धोंने जन्म दिया। वह पहिलेसे बीजरूपमें थी, बौद्धोंने उसका विस्तार किया और फिर इस विस्तृत रूपको तन्त्राचार्य्योंने लेकर अपने ढङ्गसे विकसित किया।

जहाँतक मुझे ज्ञात है स्वयं बुद्धदेवने कभी गणेशका चर्चा नहीं किया है। उनके समयतक, जो विक्रमसे लगभग छः सौ वर्ष पूर्व था, गणपतिको देवोंमें स्थान नहीं मिला था। बादको बुद्धदेवके निर्वाणके कई सौ वर्ष बाद महायान सम्प्रदायका उदय हुआ। यह सम्प्रदाय उत्तर भारतसे तिब्बत, चीन और जापानतक फैला। इसने बहुतसे मन्त्रयन्त्र और देवदेवियोंको स्थान दिया गया है जिनका पिटक ग्रन्थोंमें कहीं पता नहीं चलता। हीनयान सम्प्रदाय जो बर्मा और लङ्का में प्रचलित है इस तान्त्रिक पद्धतिको नहीं मानता।

जिस प्रकार पुराणों के रचयिता वेदव्यास बतलाये जाते हैं और तन्त्रके मुख्य ग्रन्थोंनें यह शैली रखी गयी है कि साक्षात् शङ्कर उनका उपदेश करते हैं उसी प्रकार महायान सम्प्रदायके तन्त्रोंमें यह कहा जाता है कि यह उपदेश स्वयं बुद्धदेवने किया था परन्तु गोप्य होनेसे उसको कुछ मुख्य अधिकारी शिष्यों तथा देवगणोंतक ही रखा। इन बौद्ध तन्त्रोंमें गणेशके उन दोनों रूपोंकी झलक मिलती है जिनसे हम पौराणिक ग्रन्थोंके द्वारा परिचित हो चुके हैं। वह हमारे सामने विघ्नकर्ताके रूपमें भी आते हैं और मङ्गलकर्ता बनकर भी देख पड़ते हैं।

मञ्जुश्री मूलकल्प महायान सम्प्रदायका प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ है। उसकी भाषा संस्कृत है परन्तु लिङ्ग, कारक आदिके सम्बन्धके वैयाकरण नियमोंका उल्लङ्घन प्रायः प्रत्येक श्लोकमें किया गया है। इन बातोंसे उसकी पवित्रता और मान्यता अधिक बढ़ गयी है। महायान सम्प्रदायके श्रद्धालु व्यक्ति उसको बौद्धमतका मन्त्रभागसा मानते हैं। उसमें भगवान् शाक्य मुनिने कुमार मञ्जुश्री बोधिसत्त्वको मन्त्रशास्त्र बताया है। कहीं कहीं मञ्जुश्री और पर्षन्मण्डलके तथा बुद्धदेव और पर्षन्मण्डलमें भी कथनोपकथन है। इस पुस्तकमें विनायक दुष्टसत्व माने गये हैं।

एकबार भगवान्ने बोधिसत्त्व मञ्जुश्रीको मन्त्रराज 'भ्रूम्' का अनुष्ठान बतलाया। उस समय परिषत्में वज्रपाणि बोधिसत्त्व भी थे। उन्होंने यह प्रश्न पूछा कि भगवान् कृपा करके यह बतलायें कि वह कौनसे स्वप्न हैं जिनसे साधक यह अनुमान करे कि उसको सफलता मिलनेवाली है, कौनसे स्वप्न असिद्धिसूचक हैं और असिद्धिको दूर करनेके कौनसे उपाय हैं। इस पर भगवान् शाक्यमुनिने लम्बा प्रवचन किया जो पुस्तकके पञ्चदश पटलविसरमें दिया हुआ है। उसका प्रसङ्गानुगत अंश यह है:—

विघ्नघातन मंत्रं तु तस्मिं काले प्रकल्प्यते।
युक्तिरूपा तदा मंत्रा जापिनां तं प्रयोजयेत्॥
षड्भुजोऽथ महाक्रोधः षण्मुखश्चैव प्रकल्पिते।
चतुरक्षरो महामंत्रः कुमारेमूर्तिनिसृतः॥
घोररूपा महाघोरो वराहाकार सम्भवः।
सर्वविघ्न विनाशार्थं कालरात्रं तदेवराट्॥
व्याघ्रचर्म निवस्तस्तु सर्पाभोग विलम्बितः।
असिहस्तो महासत्त्वः कृतान्तरूपी महौजसः॥

निर्घृणः सर्वविघ्नेषु विनायकानां प्राणहन्तकृत् ।
शृण्वन्तु सर्वभूता वै मंत्रे तंत्रे सुदारुणम् ॥
नाशको दुष्ट सत्वानां सर्वविघ्नोपहारिकः ।
साधकः सर्वमंत्राणां देवसंघा शृणोथ मे ॥

नमः समन्तबुद्धानामप्रतिहतशासनानाम् । तद्यथा—'हे हे महाक्रोध, षण्मुख, षट्चरण, सर्वविघ्नघातक, हूँ हूँ, किं चिरायसि, विनायकजीवितान्तकर, दुःस्वप्नं मे नाशय, लंघ लंघ, समयमनुस्मर, फट् फट् स्वाहा ।

इसका भावार्थ यह है कि यदि साधकको दुःस्वप्न देख पड़ें तो वह महाक्रोधका आवाहन करे । महाक्रोधके छः मुँह, छः हाथ और छः चरण हैं, वह व्याघ्रचर्मधारी हैं, वराहाकार हैं, सर्प लपेटे हुए हैं, घोर रूप हैं, निर्दय हैं, उनके हाथमें तलवार है, विनायकोंके प्राणहन्ता हैं और सब मन्त्रोंके साधक हैं । उनका मन्त्र यह है :—'हे हे महाक्रोध, षण्मुख, षट्चरण, सर्वविघ्नघातक, हूँ हूँ, किं चिरायसि, विनायक जीवितान्तकर, दुःस्वप्नं मे नाशय, लंघ लंघ, समयमनुस्मर, फट् फट् स्वाहा' । इस मन्त्रमें हुँ, फट्, स्वाहा के सिवाय जो वाक्य आये हैं उनका अर्थ है—हे महाक्रोध, क्यों देर करते हो, हे विनायकोंके प्राण लेनेवाले, मेरे दुःस्वप्नका नाश करो, पार करो, अपने प्रणका स्मरण करो' । ऐसा लिखा है कि इस प्रवचनको सुनकर सब विघ्नविनायक भग्नहृदय, त्रस्त, भीत, आर्त हो गये ।

यहाँ कई बातें द्रष्टव्य हैं । विनायकोंके शत्रु क्रोधराजको षण्मुख कहा है जो पुराणोंमें गणेशजीके बड़े भाईका नाम है । उनके शरीरमें सर्प लिपटा हुआ है जैसा कि गणेशजीके शरीरमें भी है । वह विनायकोंके शत्रु हैं परन्तु स्वयं भी घोर रूप हैं । यहाँ भी विनायक उसी प्रकार दुःस्वप्नकर्त्ता माने गये हैं जैसा कि याज्ञवल्क्य स्मृतिमें लिखा है ।

तीसवें पटलविसरमें उन स्थानों और पीठोंके नाम दिये गये हैं जहाँ मन्त्र विशेष सिद्ध होते हैं । इन स्थानोंमें चीन, महाचीन, बलख जैसे नाम भी हैं । विन्ध्यप्रदेश कार्त्तिकेय मन्त्र और वैनायिकी सिद्धिके लिए विशेषतः उपयुक्त बताया गया है । विनायका शक्तिको ईशानकी लड़की कहा है । वह जप करनेवालोंके लिए विघ्नकर्त्री है । यों तो उसके अनेक रूप हैं परन्तु वह मुख्यतया 'हस्ताकारसमायुक्ता अनेकदन्ता' है । हस्ताकारसमायुक्ताका अर्थ है हाथके आकारवाली । सूँड भी हाथ जैसा होता है, इसीसे हस्ती, हाथी, नाम पड़ा है । अतः वैनायिकी शक्ति हस्तिके आकारकी है । यह स्पष्ट ही गणेशजीके गजवदन होनेवाली बात है । इस उपदेशमें विनायक सिद्धिके साथ साथ कार्त्तिकेय सिद्धिका उल्लेख है । कार्त्तिकेय गणेशजीके बड़े भाई षण्मुखका नाम है । ईशान शङ्करका नाम है । वैनायिकी शक्तिको ईशानकी लड़की कहना उस मतसे मिलता है जो विनायकको शङ्करका लड़का कहता है ।

सैंतालीसवें पटलविसरमें मन्त्रानुष्ठानमें सिद्धिके लिए कई उपदेवों और अपदेवोंकी शान्तिके प्रयोग दिये हैं । अन्तमें जया, अजिता, अपराजिता, वामनीपिशाची, महाराक्षसी आदिके साथ 'चतुर्वक्त्रविभूषित मूर्ति त्रिनेत्र लम्बोदर बहुरूपी' का भी नाम आया है । यद्यपि यहाँ यह नहीं कहा गया है कि यह विनायक हैं परन्तु जितने विशेषण दिये गये हैं वह सब गणेशजीपर घटते हैं । उनके चतुर्वक्त्र (चतुर्मुख) ध्यान भी होते हैं ।

इन सब स्थलोंको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह ग्रन्थ बना उस समय विनायक केवल विघ्नकर्ताके रूपमें माने जाते थे । विनायक अनेक थे, उनके रूप भी एक दूसरेसे भिन्न थे । इन विग्रहोंमें सर्पविभूषित, हस्तिशरीरी, लम्बोदर, त्रिनेत्र देही भी थे । काल पाकर यह सब मिल मिलाकर एक विनायक—गणेश रूप बना होगा, जैसा कि आठवें अध्यायमें अनुमान किया गया है ।

इन विनायकोंसे कार्त्तिकेयका भी सम्बन्ध माना जाता था । उस समय कार्त्तिकेय विनायकके शत्रु गिने जाते थे परन्तु दोनोंके मन्त्रोंका सिद्धिस्थान एक ही था । विघ्नहन्ताका क्रूर स्वभाव और उग्र रूप तथा उनके क्रोधराज नामका भी यहाँ संकेत है कि उस समय तक स्कन्द और विनायकमें विशेष भेद न था और विघ्नकर्ता विघ्नहर्तासे मिलता जुलता था ।

काल पाकर यह अवस्था बदल गयी। पीछेसे यह कथा प्रचलित हुई कि बुद्धदेवने अपने प्रिय शिष्य आनन्दको राजगृहमें परम गोपनीय गणपतिहृदय नामका सिद्धिदाता मन्त्र बतलाया था। इस मन्त्रके आधारपर गणेशकी शक्तिको गणपतिहृदया नामसे पुकारते हैं।

साधनमाला विख्यात बौद्ध तन्त्रग्रन्थ है। उसमें बहुतसे देव देवियोंको सिद्ध करनेके उपाय दिये गए हैं। इनमें गणपति साधन भी है। उसको हम अविकल अवतरित करते हैं—

ॐ नमः श्रीगणपतये

ॐ आः गः शान्ति कुरुष्व माँ ह्रीं भ्रूँ हुँ स्वाहा, हृदयः। ॐ राग सिद्धि सिद्धि सर्व्वार्थं मे प्रसादय प्रसादय हुँ ज ज स्वाहा, उपहृदयः। ॐ आः गः हुँ स्वाहा, ॐ वरदकराय स्वाहा, ॐ वक्रैकदंष्ट्र विघ्नेश हुँ फट स्वाहा, ॐ गणपत्यै स्वाहा, ॐ शान्तिङ्करि भ्रुँ हारिरोहाडाकिनि हुँ फट स्वाहा, ॐ जः मेमि हुँ कुरु वँ ॐ अन्ये होः ज ज स्वाहा।

इस मन्त्रमें आवेमें तो पुरुषरूपी गणपति, शेषमें गणपत्यैसे स्त्रीरूपी गणपतिशक्तिकी ओर संकेत है। मन्त्रके साथ गणपतिभावना (ध्यान) भी दिया हुआ है। वह इस प्रकार है—

† भगवन्तं गणपतिं रक्तवर्णं जटामुकुटकिरीटिनं सर्वाभरणभूषितं द्वादशभुजं लम्बोदरैकवदनं अर्द्धपर्य्यङ्कताण्डवं त्रिनेत्रमप्येकदन्तं सव्यभुजेषु कुठार शरअङ्कुशवज्रखड्गशूलं च वामभुजेषु मूषलचापखट्वाङ्ग असृक्कपाल शुष्कमांस कपालफटकं च रक्तपद्मे मूषकोपरिस्थितमिति।

[भगवान् गणपतिका जो रक्तवर्ण, जटामुकुट किरीट धारी, सर्वाभरण-भूषित, द्वादशभुजाधारी, लम्बोदर, एकमुख अर्द्धपर्य्यङ्कताण्डवमुद्रासे बैठे, त्रिनेत्र, एकदन्त, दहिने हाथोंमें कुठार तीर अथवा खड्ग और शूलधारी और बाएँ हाथोंमें मूसल, धनुष खट्वांग रक्त या सूखे मांसका पात्र और फट् धारी और रक्तपद्मपर मूषकके ऊपर स्थित हैं (ध्यान करे)]

बौद्धधर्म्मके साथ गणपति भारतके बाहर गये। उनके कई विचित्ररूप और ध्यान भी बने। तिब्बतमें और उससे भी उत्तरके बौद्ध देशोंमें गणेश द्वारपालके स्थानपर मठके द्वारपर खड़े किये जाते हैं। कहीं कहीं गणेशकी ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं जिनमें वह किसी देव देवीकेपाँवके नीचे हैं। किसी मूर्तिमें वह भृकुटितारके पद्मासनके नीचे हैं, किसीमें पर्णशवरीके सिंहासनके नीचे। अपराजितासे समाक्रान्त गणपतिकी कई मूर्तियाँ मिलती हैं। किसी में वह चित पड़े हैं, किसीमें देवी का एक पाँव उनके बाएँ पाँवपर है, किसीमें एक पाँव उनके पाँवपर, दूसरा सिरपर है। ऐसी भी मूर्तियाँ हैं जिनमें गणपति या विनायक विघ्नान्तकके पाँवके नीचे पड़े हुए हैं। कहीं गणेशको महाकाल नामके देवने या मञ्जुश्री बोधिसत्वने दबा रक्खा है।

इन सब मूर्तियोंमें गणेशकी वेषभूषा एकसी नहीं है। तुर्किस्तानमें तो उन्होंने पायजामा पहिन रक्खा है, शलवारधारी गणेश भी मिलते हैं। सिर परके मुकुट, ललाट परके तिलक, सिरों और हाथोंकी संख्यामें भेद है। एक मूर्तिमें गणेशका एक पाँव चूहेपर, दूसरा सिंहपर है। यह हेरम्ब गणपतिकी प्रतिमा है, सामान्यतः हेरम्ब सिंहकी सवारी करते हैं।

---

* यह ध्यान देनेकी बात है कि जहाँ गणपति शक्तिको शान्तिकरी कहा गया है वहाँ उसका नाम हारिणेश डाकिनी बतलाया गया है।

† इस ध्यानमें लम्बोदर, त्रिनयन, एकदन्त, मूषकोपरिस्थित और रक्तवर्ण गणेशजीके ही विशेषण हैं, गणपति नाम भी उनका है, परन्तु सूँडका उल्लेख नहीं है। आयुधोंमें भी कई विलक्षण वस्तुएँ हैं! खट्वाङ्ग (एक प्रकारका दण्ड जिसके सिरे पर नरमुण्ड बना होता है), मूसल और रक्त तथा सूखे माँसके पात्र नयी चीजें हैं। मैं ठीक नहीं कह सकता कि बायें हाथके फट्का क्या अर्थ है। सर्पके फैले हुए फनको फट कहते हैं। सम्भव है इस हाथमें फन फैलाए हुए सर्प हो। सर्प गणपतिके साथ किसी न किसी रूपमें अन्यत्र देखा भी जाता है। अर्धपर्य्यंकासन, वह आसन है जिसमें दाहिना पाँव बायें पाँवके ऊपर रहता है। इसके साथ ताण्डव नृत्य करनेकी मुद्राके मिलनेसे अर्धपर्यंक ताण्डव मुद्रा बनती है। नाचने वाला इस प्रकार खड़ा देख पड़ता है कि उसका बायाँ पाँव दाहिनी जंघा पर होता है।

तुर्किस्तानमें बअज्रअल्किकमें गुफाके भीतर दीवारोंपर चित्र बने हैं। इनमें एक चित्र ध्यान देने योग्य है। इसमें मूर्तिका मुँह हाथी और सूअर दोनोंसे मिलता है। कोई उसे गणपतिकी मूर्ति कहता है, कोई बाराह की। मूर्ति गणेशकी ही होनी चाहिये क्योंकि एक दूसरे चित्रमें यही शरीर शिव और कार्तिकेयके साथ पाया गया है। यहाँपर मञ्जुश्री मूलकल्पमें दिये हुए क्रोधराजके स्वरूपकी याद आती है। वह हस्ताकारसमायुक्त और बराहाकारसम्भव—हाथीके आकारवाले और सूअरके आकारसे उत्पन्न—बतलाये गये हैं।

जिन महाकालके पाँवके नीचे गणेशकी प्रतिमा मिलती है उनका मङ्गोलियामें शिवका अवतार माना जाता है। पुराणोंमें भी शिवका एक नाम महाकाल बताया गया है।

इन सब मूर्तियोंका यही भाव है कि गणपति विघ्न करनेवाला अपदेव है, उसको विघ्नान्तक या अपराजिता दैवी शक्ति दबा लेती है। जो साधक आध्यात्मिक उन्नति करना चाहता हो उसको चाहिये कि इन शक्तियोंको जगाकर विघ्नोंका शमन कर ले। तब उसको साधनामें सफलता मिलेगी। किसी किसी मूर्तिमें नीचे पड़े हुए गणपतिके मस्तकपर किरीट, ललाटपर त्रिपुण्ड्र अथवा हाथमें त्रिशूल है या अन्य कोई ऐसा लिङ्ग है जिससे यह स्पष्ट हो जाता कि यह बौद्ध विनायक नहीं वरन् पौराणिक गणेशकी अनुकृति है। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह मूर्तियाँ प्रचलित हिन्दू धर्म्मपर बौद्ध धर्म्मके विजयको दिखलाती हैं। शिल्पी यह बताना चाहता है कि हिन्दू धर्म्म बौद्ध धर्म्मके प्रचारके मार्गमें विघ्न स्वरूप है, उसको दैवी शक्ति कुचल रही है।

महायानमें, जिसके पुष्ट रूपको वज्रयान (वज्र=दृढ़) कहते हैं, देव देवियोंकी उपासना शुद्ध बौद्ध सिद्धान्तोंके अनुरूप चाहे न प्रतीत होती हो परन्तु इस मार्गके विद्वान् इस असामञ्जस्यको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि जगत् असार, मिथ्या, शून्य है। देव देवियोंकी सत्ता उतनी ही सत्य या मिथ्या, सारगर्भ या सारहीन है जितनी कि प्रतीयमान जगत्के अन्य वस्तुओं की। जहाँतक साधना करनेवाला सच्चा है, जहाँतक उसकी वासनाएँ और कठिनाइयाँ, उसकी शक्तियाँ और आशाएँ सच्ची हैं, जहाँतक प्रयत्न करता है, वहाँतक उसके लिये जगत् भी सच्चा है, देव देवी भी सत्य हैं। जब वह किसी विशेष मन्त्रका जप करता हुआ तत्सम्बन्धी भावनापर चित्त स्थिर करता है और अन्तःकरणसे एकाग्र हो जाता है तो शून्य उसके लिये वही रूप धारण करता है, तदाकार बन जाता है, उस देवताका आविर्भाव होता है, साधकको वह सिद्धि प्राप्त होती है। किसी देवता विशेषका प्रत्यक्ष आविर्भाव हुए बिना भी हमारे दैनंदिनके जीवनमें यही हो रहा है। हम वासनानुसार चेष्टा करते हैं और जहाँतक अपने चित्तको खींचकर किसी विषयपर एकत्र कर पाते हैं वहाँतक शक्तिका अनुभव करते हैं और सिद्धि लाभ करते हैं। जितना ही साधकका चित्त निर्मल होगा, उतना ही उसको सफलता मिलेगी। मलिन सत्त्व छोटी सिद्धियोंके पीछे दौड़ते हैं, वह उपदेवताओं और अपदेवताओंको जगाते हैं, ऊँचे कोटिके साधक ध्यानकी ऊँची भूमिकाओंमें रमण करके निर्वाण पदकी ओर बढ़ते हैं। प्रत्येक देवदेवीको उस समाधिलोकका प्रतीक मानना चाहिये जहाँतक साधक धारणाके बलसे पहुँच पाता है।

कई देव देवियोंके नाम बौद्ध और हिन्दू तन्त्रोंमें समान रूपसे मिलते हैं। इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि दोनों सम्प्रदाय समान उपासना करते थे। कुछ देव एकने दूसरेसे लिये हैं। इस श्रेणीमें तारा देवी हैं; गणपतिको भी इसी सूचीमें रख सकते हैं परन्तु बहुतसे बौद्ध ध्यानोंमें वैदिक देव, जैसे विष्णु, शिव, इन्द्र और वरुण बौद्ध देव देवियोंके पैरोंके नीचे पड़े बतलाये जाते हैं। विनायक रूपसे गणेश भी इसी प्रकार आक्रान्त मिलते हैं। बौद्ध विद्वान् इन बातोंकी आध्यात्मिक मीमांसा तो करते ही हैं परन्तु यह भी मानना पड़ता है कि यहाँ हमको साम्प्रदायिक विद्वेषकी भी झलक देख पड़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले वैदिक धर्म्मको नीचा दिखानेकेलिये ऐसे ध्यान बनाये गये, उनके अनुसार मूर्ति और चित्रका निर्माण किया गया, फिर इनपर अध्यात्मिक शब्दाडम्बरसे पर्दा डालनेका उद्योग किया गया।

गणेश और बौद्ध धर्म्मका विषय अन्तिम अध्यायमें फिर लिया जायगा। यहाँपर इतना दिग्दर्शन पर्य्याप्त है।

जैन धर्म्ममें जिनेन्द्र भगवान्को ही गणेश और विनायक कहते हैं। इस नामके किसी पृथक् देवका उल्लेख नहीं मिलता। विवाहके समय विनायक यन्त्रकी पूजा की जाती है। उस अवसरपर जो श्लोक पढ़े जाते हैं वह द्रष्टव्य है:—

गणानां मुनीनामधीशस्त्वतस्ते गणेशाख्यया ये भवन्तं स्तुवन्ति।
सदा विघ्नसन्दोह शान्तिर्जनानां, करे संलुठत्यायत श्रेयसानाम्॥
कलेः प्रभावात्कलुषाशयस्य, जनेषु मिथ्यामद वासितेषु।
प्रवर्तितोऽन्यो गणराजनाम्ना, लम्बोदरो दन्तिमुखो गणेशः॥
रुद्रेण कामज्वलितेन गौर्य्या, विनोदभारान्मलमुत्तापित्वा।
कृतः पुराणेष्विति वाचयित्वा, सन्मङ्गलं तं कथमुद्गिरन्ति॥
यतस्त्वमेवासि विनायको मे, दृष्टेष्टयोगानवरुद्धभावः।
त्वन्नाममात्रेण पराभवन्ति, विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम्॥

[आप मुनियोंके गणोंके अधीश हैं इसलिये जो लोग आपकी गणेश नामसे स्तुति करते हैं उनके विघ्न शान्त हो जाते हैं और कल्याणका भण्डार उनके हाथमें आता है। मलिन कलिकालके प्रभावसे मिथ्यामद वासित लोगोंमें लम्बोदर हस्तिमुख दूसरा ही गणराज प्रवर्तित हो गया है। पुराणोंमें यह पढ़कर कि कामज्वलित रुद्रने गौरीके विनोदभारसे मल फेंककर उसे बनाया कैसे उनको मङ्गलमय कहते हैं? चूँकि आप ही पूर्ण रूपसे विनायक हैं इसलिये इसमें आश्चर्य्य ही क्या है कि आपके नाममात्रसे विघ्नरूपी शत्रु हार जाते हैं?]

बङ्गाल तथा मांणपुरकी ओरसे हिन्दू धर्म्म भी छनछनाकर पहुँच गया था। इसलिये इधर गणेशकी मूर्तियोंका अधिक संख्यामें पाया जाना स्वाभाविक था। बर्मामें गणेशका नाम महापिएन पड़ गया था। सम्भवतः पिएन विनायकका विकृत रूप है। यह भी हो सकता है कि विघ्नका पिएन हो गया है।

स्याम देशके निवासी मङ्गोल हैं, परन्तु उनकी संस्कृति आर्य्य संस्कृतिसे ओतप्रोत है। पहिले तो वैदिक धर्म्म ही राजधर्म्म था। आज वह लोग बौद्ध हैं परन्तु राज्याभिषेक तथा कुछ और कृत्य अब भी वैदिक पद्धतिके अनुसार होते हैं। इस देशमें गणेशजीकी कई मूर्तियाँ मिलती हैं। इनमें से कुछ बहुत सुन्दर हैं। मूर्ति कलाकी जिस शैलीके अनुसार इनका निर्माण हुआ है उसको अयूथियन कहते हैं क्योंकि उन दिनों राजधानीका नाम अयूथिया (अयोध्या) था।

स्यामसे पूर्व कम्बोडिया है। इसका पुराना नाम कम्बुज था। यह देश अपनी मूर्तिराशिके लिए प्रसिद्ध है। पुरानी राजधानी अङ्कुरवटको प्रतिमाओंकी खान कह सकते हैं। बौद्ध होनेपर भी आजतक वहाँ बहुतसे हिन्दू रवाज पाये जाते हैं। स्वभावतः कम्बोडियामें भी गणेशजीकी प्रतिमाएँ उपलब्ध हैं।

कम्बोडिया एशिया महाद्वीपके उस भूभागका टुकड़ा है जिसको हिन्दचीन कहा जाता है। आगे चलकर इसकी क्या अवस्था होगी यह नहीं कहा जा सकता परन्तु वर्तमान महायुद्धके पहिले यह सारा प्रदेश फ्रेञ्च आधिपत्यमें था। यहाँ गणेशजीका नाम केनेस हो गया है।

बृहत्तर भारतकी कुछ मूर्तियोंके चित्र फलक ६ में दिखलाये गये हैं।

भारतसे पूर्वके इन देशोंमें गणेशकी ऐसी भी मूर्तियाँ मिली हैं जिनको बुद्ध मूर्तियोंका सादृश्य दिया गया है। गणेशजी वज्रासनसे बैठे हुए ध्यानावस्थित हैं, उनका हाथ भूस्पर्शमुद्रामें है। सम्भवतः इन मूर्तियोंकी पूजा करनेवाले सम्प्रदायोंमें गणेशजीको बुद्धका पद दिया जा रहा था या उनको बोधिसत्वका प्रतीक माना जा रहा था। यह प्रवृत्ति हमको आगे चलकर चीन जापानके आध्यात्मिक जीवनमें भी मिलेगी।

ग्यारहवाँ अध्याय

चीन और जापानके आध्यात्मिक जीवनमें विनायकका स्थान

चीनका भारतसे बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है। उस देशमें बौद्ध धर्म्मके प्रवेश होनेके बाद यह सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया। कई भारतीय पण्डित और बौद्ध भिक्षु धर्म्म प्रचारके लिये चीन गये और तीर्थाटन करनेके लिये चीनी यात्री भारत आये। कई चीनी विद्वानोंने नालन्दा विद्यापीठमें शिक्षा ग्रहण की और भारतसे संस्कृत और पालीके ग्रन्थ चीन ले गये। चीनी कलापर भारतीय कलाका प्रभाव पड़ा और चीनसे होती हुई भारतीय संस्कृति मङ्गोलिया और दक्षिणी साइबीरियातक किसी न किसी रूपमें पहुँची। साइबीरियाके अर्द्धजङ्गलियोंके जादूगर पुरोहित आज भी समन (संस्कृत श्रमण) कहलाते हैं।

तुनहुआङ्गमें एक गुफामें दीवारपर मूर्तियाँ बनी हुई हैं। यह मूर्तियाँ उसी ढंगकी हैं जैसी कि अजन्तामें हैं। इनको या तो भारतीय शिल्पियोंने बनाया है या उनके चीनी शिष्योंने। इनमें बुद्ध मूर्तियोंके अतिरिक्त सूर्य्य, चन्द्र, कामदेव आदिके साथ गणेश की भी मूर्ति है। उन्होंने सिरपर पगड़ी और पाँवमें शलवार पहिन रक्खा है। कुङ्गह्सिएनके गुफा मन्दिरमें जो मूर्ति है उसके साथ निर्माणकी तिथि (सं० ५८८) अङ्कित है। इतनी प्राचीन मूर्ति भारतमें भी है या नहीं, यह कहना कठिन है क्योंकि किसी और मूर्तिकी तिथि ज्ञात नहीं है। यह विनायककी प्रतिमा है। चीनी अक्षरोंमें लिखा है कि हाथियोंके अमानुष राजाकी मूर्ति है। वहीं नागों, मछलियों, पेड़ोंके अमानुष राजाओंकी भी मूर्तियाँ हैं।

चीनमें गणेशजीका प्रवेश विनायकके रूपमें ही हुआ होगा, उनकी मूर्तियोंको चीनी-यात्री अपने साथ ले गये होंगे, परन्तु वहाँ जाकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। जातककी कथा है कि बुद्धदेवकी माताने यह स्वप्न देखा कि एक हाथी उनकी कोखमें प्रवेश कर रहा है। उसी गर्भसे तथागतका जन्म हुआ। इसलिये चीनमें हाथी बुद्धका प्रतीक माना जाता था। सम्भवतः इसीलिये हस्तिमुख गणपति भी आदरके पात्र बन गये होंगे।

बौद्धोंमें योगाचार नामका एक सम्प्रदाय था। उसके दार्शनिक सिद्धान्तका निरूपण श्रीपाद शास्त्रीके द्वादशदर्शन-सोपानावलिमें बहुत ही सरल संस्कृतमें मिलता है। जैसा कि नामसे प्रकट है, इस सम्प्रदायमें निर्वाणके लिये समाधिके अभ्यास पर जोर दिया जाता था। यह सम्प्रदाय उत्तर भारतमें अधिक प्रभावशाली था, यहाँसे चीन गया। धीरे धीरे इसमें योगाभ्यासकी जगह मन्त्र यन्त्र लेने लगे और यह महायानके अन्तर्गत वज्रयान तान्त्रिक सम्प्रदाय बन गया। इस प्रकार तान्त्रिक पूजा भी चीन पहुँची।

वज्रयानके पण्डित इस बातको नहीं स्वीकार करते। वह ऐसा नहीं मानते कि मन्त्र यन्त्रके मिलनेसे सम्प्रदाय बिगड़ गया है। उनका विश्वास है कि आरम्भसे ही यह रूप है। ऊँचे अधिकारीके लिये शुद्ध योगाभ्यासकी क्रिया है, साधारण अधिकारियोंके लिये उनकी योग्यताके अनुसार नाना प्रकारके मन्त्र और धारणियाँ हैं। इन उपायों से साधकको ध्यानके ऊँचे स्तरोंके योग्य बनानेका काम लिया जाता है।

सबसे पहिले तान्त्रिक उपासनाशैलीको चीन कौन ले गया यह ठीक नहीं कहा जा सकता। सम्भवतः इसका आंशिक श्रेय कई विद्वानोंको है। सं० ६९८ में ह्युआन चाओ नामके बौद्ध साधु भारत आये। यहाँ उन्होंने कई वर्ष नालन्दामें रहकर महात्मा रत्नसिंहसे दीक्षा लेकर योगका अभ्यास किया। बहुतसी पुस्तकोंको लेकर वह चीन लौटे। इनमें तन्त्रकी पुस्तकें भी रही होंगी क्योंकि उन दिनों उत्तर भारतमें सर्वत्र तान्त्रिक पूजा फैली हुई थी। ह्युआन चाओके देहान्तके थोड़े दिनों बाद, सं० ७७३ में शुभाकरसिंह चीन गये। यह उत्कल प्रदेशके राजा थे। वानप्रस्थ लेकर अपने गुरु धर्म्मगुप्तकी आज्ञासे तन्त्रमार्गका प्रचार करने चीन गये थे। चीनमें इनके नामका रूप शु-फो-किए-लो साँ-हो हो गया। अस्सी वर्षके बुड्ढे थे

परन्तु बहुत परिश्रमी थे। अन्य पुस्तकोंके अतिरिक्त इन्होंने महावैरोचन सूत्रका चीनी भाषामें अनुवाद किया। निन्यानवे वर्षकी अवस्थामें इन्होंने सं० ७९२ में शरीर छोड़ा।

लगभग उन्हीं दिनों चीनमें हुइकुओ नामके सिद्ध पुरुष रहते थे। तांत्रिक क्रिया और योगाभ्यासमें उनकी बहुत ऊँची गति थी। उन्होंने सात वर्षकी अवस्थामें सिंहल पंडित अमोघवज्रसे दीक्षा ली थी। अमोघवज्र उन भारतीय विद्वानोंमें थे जिनका चीनकी संस्कृतिपर अमित उपकार है। यदि किसी एक व्यक्तिको चीन-जापानमें तंत्रके प्रचारका श्रेय देना हो तो वह व्यक्ति अमोघवज्र हैं। उनके नामका चीनी उच्चारण ओ-मु-कु-पो-को-लो था। चीनी सम्राट्ने उनको ता-क्वाङ्-क्सान-त्साउ (त्रिपिटक भदन्त) की उपाधि दी। उन्होंने सं० ८२८ में सम्राट् ताइ-त्सुनको जो रिपोर्ट दी थी उसमें कहते हैं "अपने लड़कपनसे मैंने अपने गुरु वज्रबोधिकी चौदह वर्ष (सं० ७७६ सं० ७८९ तक) सेवा की और उनसे योगकी शिक्षा प्राप्त की। तब मैं भारतके पाँचों प्रदेशोंमें गया और बहुतसे सूत्र और शास्त्र एकत्र किये, जिनमेंसे पाँच सौसे अधिक ऐसे हैं जो कभी चीन नहीं लाये गये थे। सं० ८०३ में मैं राजधानी लौटा। उस समयसे अबतक मैंने सतहत्तर ग्रंथोंका अनुवाद किया है।" इसके तीन वर्ष बाद सत्तर वर्षकी आयुमें उनकी मृत्यु हुई। मरनेके बाद भी सम्राट्ने उनको ता-पिएन-कङ्-काङ्-क्सान-त्सान (त्रिपिटक भदन्त महावाग्मिता शुद्ध विस्तृत बुद्धि) की उपाधि दी। उनके बाद भी कई पंडित गये। भारतमें मुस्लिम राजकी स्थापनाके बाद यह धारा बंद हो गयी।

चीन-जापानमें तांत्रिक मतको कुआङ्-शि-तिएन या काँगि-तेन कहते थे। इस मतकी उपासनापद्धतिपर विचार करनेके पहिले वज्रयानके* दार्शनिक सिद्धान्तको और उसकी भाषागत अभिव्यक्तिको समझ लेना चाहिये। योगीलोग बहुधा अपने अनुभवों और मन्तव्योंको स्पष्ट न कह कर ऐसी भाषामें व्यक्त करते हैं जिसका अर्थ या तो अधिकारीको ही बतलाया जाता है या लक्षणा और व्यञ्जनाकी सहायतासे निकल सकता है। ऐसी भाषाको समाधि भाषा कहते हैं। योग और तंत्रसंबंधी रहस्य प्रायः समाधि भाषामें ही छिपाकर रखे जाते हैं। इस भाषाके आधारपर यदि चित्र या मूर्तिका निर्माण किया जायगा तो वह भी तभी समझमें आ सकती है जब रहस्यकी कुंजी पहिले प्राप्त कर ली जाय। अन्यथा वह विकृत, निरर्थक या भद्दी प्रतीत होगी।†

"तब निर्विकार बुद्ध कुन्तु-ब्ज़ाँ-ग्यो (समन्त भद्र) ने यह आशीर्वचन कहे जिनसे संसारके सभी प्राणियोंका कल्याण होगा:—

सुनो। सब जो दृश्य या अदृश्य है, चाहे संसार हो या निर्वाण, वस्तुतः एक (अर्थात् शून्यता) है। उसके दो मार्ग (अविद्या और विद्या) हैं और दो लक्ष्य (संसार और निर्वाण) हैं। यह (मार्ग और लक्ष्य) अविद्या और विद्या की विचित्र लीला हैं। कुन्तु-ब्ज़ाँ-ग्योके आशीर्वचनकी शक्तिसे सबलोग धर्म्मधातुमें बुद्धत्व प्राप्त करें।

सबका आधार अज, स्वतन्त्र, अमिश्रित और मनवाणीके परे है। उसको न निर्वाण कह सकते हैं न संसार। उसका साक्षात्कार करना बुद्ध होना है, उसका साक्षात्कार न करना सांसारिक जीवनमें भटकना है। तीन लोकोंके सब प्राणी सब (सम्पूर्ण जगत्) के इस अवर्ण्य आधारका साक्षात्कार करें।"

जगत्के इस आधार, मूलतत्त्वका, जो मनवाणीसे परे है, जिसका निर्वचन नहीं हो सकता अर्थात् जिसके लिए केवल नेति नेति कहा जा सकता है, साक्षात्कार करना साधकका लक्ष्य होता है। इस धर्म्मधातुके दो रूप हैं, वह दो प्रकारसे साधकके सामने प्रकट होता है। इन दोनोंमेंसे एकको पुरुष, दूसरेको स्त्रीके रूपमें दिखलाते हैं। स्त्रीपुरुषको मिलाकर जो युगलमूर्ति बनेगी वह धर्म्मधातुका प्रतीक होगी। स्त्रीपुरुष एक दूसरेके आमने सामने आलिङ्गन करते बनाये जाते हैं। यह

* हमने वज्रयान के सिद्धान्तोंका जो उल्लेख किया है वह महायानके प्रायः सभी प्रभेदों के लिए लग सकता है।

† श्रीचक्रसम्भारतन्त्र।

उनकी अच्छेद्यता, मिथः पूप्ररकताका द्योतक है। * पुरुषमूर्ति प्रतीति, उपाय, महाकरुणा और स्त्रीमूर्ति प्रज्ञा, शून्यता, शान्ति, आनन्द, है। दोनों मूर्तियोंके वस्त्राभूषण, आयुध आदि भी इनके तान्त्रिक स्वरूपोंके अनुरूप होते हैं।

साधनमालामें प्रज्ञा और उपायका स्वरूप विस्तारसे समझाया है—

"अनित्याः क्षणिका निरात्मानः स्वप्नेन्द्रजालसदृशाः प्रतिभासमात्राः आदिशान्ताः प्रकृतिपरिशुद्धाः अभावा अजाता अनुत्पन्नाः तथताभूतकोटिशून्याः सर्वधर्म्मा इति शून्यताया अधिवचनम्। तृष्णावशात् अमी सत्वा गम्भीरं प्रतीत्यसमुत्पाद कर्म्मक्रियावताराय धर्म्म देशयिष्यामीति करुणाया अप्यधिवचनम्। अतएवाह भगवान् समाजादौ शून्यताकरुणाभिन्नं वोधिचित्तमितिस्मृतम् ॥" (साधनमाला—वादिराट् साधने)

[शून्यताका अधिवचन यह है कि सभी वस्तुएँ अनित्य, क्षणिक, निरात्म, स्वप्नसदृश, इन्द्रजालसदृश, आदिशान्त, प्रकृतिपरिशुद्ध, अभाव, अजात, अनुत्पन्न, तथताविरहित हैं। करुणाका अधिवचन यह है कि यह सब प्राणी जो तृष्णावशात् कार्य्यकारण शृङ्खलामें बँधे हुए हैं मैं उनको धर्म्मका उपदेश दूँगा। इसीलिए भगवान्‌ने कहा है—

शून्य और करुणाके अभेदसे बोधिचित्त होता है।]

निर्मल बोधिचित्त ही धर्म्मधातुका साक्षात्कार या निर्वाणपद है। इसीकी प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारकी धारणियों† और साधनाओंका अभ्यास किया जाता है। अभ्यासकी अवस्थामें जो उत्तरोत्तर शुद्ध विज्ञान चित्तमें उदय होते हैं उनको ही देवता कहते हैं। क्रमशः साधक प्रमुदिता, विमला, प्रभाकरी, अर्चिष्मती, सुदुर्जया, अभिमुखी, दुरङ्गमा, अचला, साधुमती और धर्म्मामेघा नामकी समाधिभूमियोंमें होता हुआ अद्वय बुद्धपदको प्राप्त करता है।

धर्म्मधातुकी वास्तविक सत्ताका साक्षात्कार तो पूर्ण योगीको होता है। साधारण मनुष्य और नये साधकको तो उसका नीचा, कलुषित, प्रतीयमान रूप ही गोचर होता है। इस रूपको चित्रोंके द्वारा समझाया जाता है। इन चित्रोंमें उन आध्यात्मिक शक्तियोंको जो प्रतीयमान जगत्‌में काम कर रही हैं सङ्केतोंसे निर्दिष्ट करते हैं। कभी तो देवताओंके बीजमन्त्र दिये रहते हैं, कभी केवल नाम और कभी उनकी आकृति भी बना देते हैं। रौद्री शक्तिके लिए गं कह सकते हैं, ईशान या ईशानी लिख सकते हैं और महादेवका चित्र भी बना सकते हैं। ऐसे चित्रोंको मण्डल कहते हैं।

काङ्गि-तेन सम्प्रदायने धर्म्मधातुके प्रतीयमान रूप, उसकी सम्भोगकाया, के दो रूप माने हैं। एक तो बाहरी, दृग्विषयात्मक है। इसको गर्भधातु कहते हैं। दूसरा आभ्यन्तर, आध्यात्मिक है। इसको वज्रधातु कहते हैं। दोनोंको मण्डलोंके द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। गर्भधातुके मण्डलमें कई परिवर्तन हुए। कहा जाता है कि पहिले इसे शुभाकर सिंहने चलाया। उसके पुराने और प्रचलित रूपोंमें दो मुख्य भेद हैं। एक तो यह है कि पुराने मण्डलमें देवोंके चित्र न देकर उनके नाम लिखे हुए हैं, दूसरे उसमें विनायक नहीं हैं। पीछेसे वह जोड़े गये। वरुण, वैश्रवण, नवग्रह पहिले ही थे, ऐसा माना जाता है कि विनायकको अमोघवज्रने जोड़ा। इस चित्रमें जिन लोगोंके जो नाम और स्थान दिये गये हैं उसके लिए क्या आधार है यह नहीं कहा जा सकता। बीचमें अष्टदल कमलके मध्यमें वैरोचन हैं। तान्त्रिक योगाचारमें वैरोचन विश्वात्माका नाम है। अतः ऐसा मानना चाहिए कि शुभाकरने, जो महावैरोचन सूत्रके अनुवादक थे, ऐसे ग्रन्थोंको आधार बनाया होगा जिनमें वैरोचन-पूजाकी पद्धति दी रही होगी।

वज्रधातु मण्डलको या तो अमोघवज्रने अपने गुरु वज्रबोधिसे सीखा या तंत्रग्रंथोंके आधारपर स्वयं बनाया। गर्भधातुके चित्रमें विनायकको नवग्रह, राक्षस आदि उपदेवोंके साथ बाहरकी ओर स्थान दिया गया है। वज्रधातुमें भी उनको यही स्थान मिला है। भेद यह है कि इस मण्डलमें उनके पाँच विग्रह हैं। चार विनायक चारों दिशाओंमें हैं, सम्भवतः रक्षा

* श्रीचक्रसम्भारतन्त्र।

† कुछ विशेष प्रकारकी गुप्त तान्त्रिक साधनाओंको धारणी कहते हैं।

कर रहे हैं, पाँचवें उत्तरवाले विनायकके नीचे है। दिग्रक्षकोंमें उत्तरके विनायक वज्रमुख असिधर हैं, दक्षिणके वज्रभक्षण मालाधर हैं, पूर्वके वज्रचिन्न छत्रधर हैं और पश्चिमके वज्रवासी धनुधर्र हैं। गर्भधातुवाले विनायक भी उत्तरकी ओर स्थित हैं। दोनों चित्रोंमें एक चीज़ देखनेकी है। उनके एक हाथमें मूली है। तिब्बत और नैपालमें भी मूलीधारी मूर्तियाँ मिलती हैं। सम्भव है टूटे दाँतका कालान्तरमें मूली जैसा रूप होगया हो, कमसे कम इन देशोंमें मूली सम्बन्धी कोई कथा नहीं मिलती।

चीनमें इस वैनायक सम्प्रदायका लोप होगया है। सं० १०७४ में सम्राट् चेनत्सुङ्गने यह आज्ञा निकाली कि त्रिपिटकके साथ विनायकपूजाका चतुर्ग्रन्थीय सूत्र न जोड़ा जाय और न इस प्रकारकी पुस्तकोंका चीनी भाषामें अनुवाद किया जाय। सम्भवतः उन्होंने अन्य प्रकारसे भी इस सम्प्रदायको दबाया होगा। यह हो सकता है कि इन लोगोंने तान्त्रिक पूजाकी ऐसी भ्रष्ट पद्धतियोंका विस्तार किया हो जो चीनी लोकमतको बौद्धधर्म्मसे असङ्गत और संस्कृतिके विरुद्ध प्रतीत हुई हों। भारतमें जिस समय यह रोग बढ़ा उन दिनों यह देश अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता खो रहा था, इस लिए तन्त्र भ्रष्टसे भ्रष्टतर होता गया परन्तु रोकनेवाली कोई शक्ति नहीं बच रही थी।

मण्डलोंके यह चित्र काङ्गि-तेन सम्प्रदायकी बाह्य पूजाके अङ्ग हैं। अन्तःपूजाका वर्णन जापानके सम्बन्धमें करना ठीक होगा, क्योंकि चीनमें गुप्त पूजावाली प्रतिमाएँ नहीं मिलतीं। सम्भवतः चेनत्सुङ्ग और उनके बादके नरेशोंकी कड़ी दृष्टिने उनको लोप कर दिया।

तकाइशिके कमदेरा मन्दिरमें कोबो दाइशि नामके बौद्ध साधु ठहरे थे। जापानमें चीनके मार्गसे बौद्धधर्म्म पहुँच चुका था और जगह जगहपर बौद्ध मठ-मन्दिर स्थापित हो चुके थे। दाइशिको कमदेरामें महावैरोचन सूत्रके चीनी अनुवादकी प्रति मिली। वह उसे समझ न सके। जापानमें कोई विद्वान् ऐसा न मिला जो उसे समझा सकता। तब वह सम्राट्की अनुमतिसे चीन आये। घूमते घूमते उनको हुइकुओके, जिनका ज़िक्र चीनके सम्बन्धमें आचुका है, दर्शन हुए। हुइकुओने उनको देखते ही कहा 'मैं बहुत दिनोंसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ: मैं जानता था कि तुम आनेवाले हो'। इसके बाद उन्होंने कोबो दाइशिका अभिषेक करके उनको योगाचार वैरोचन दीक्षा दी और उसके बाहरी प्रतीक, अर्थात् गर्भधातु और वज्रधातुके चित्र, का अर्थ समझाया। कहा जाता है कि अमोघवज्र, हुइकुओ और कोबो दाइशि सभी सिद्ध पुरुष थे। दीक्षाके समय ही हुइकुओके तपःप्रभावसे क्षण भरके लिए कोबो दाइशि आदिबुद्ध वैरोचनसे तदात्म हो गये। इसी प्रकार जब जापान लौटनेपर वह सम्राट् और सब बौद्ध मठाधीशोंको सम्प्रदायरहस्य समझा रहे थे तो सबके देखते देखते यकायक उनका शरीर आदिबुद्ध जैसा हो गया और इस प्रकार सब लोगोंको भगवान् वैरोचनके दर्शन हो गये।

कोबो दाइशिंने जापानमें शिङ्गन सम्प्रदाय चलाया। यह महायान मतानुकूल है और तन्त्रमूलक है। यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि अपने गुरु हुइकुओसे प्राप्त शिक्षामें दाइशिने क्या परिवर्धन किया।

उपासनाका हृदय काङ्गि-तेनकी पूजा थी। काङ्गि-तेन युगलमूर्ति थी। इसके द्वारा विश्वात्मा और आदितत्वका योग-एकीभाव-दिखलाया जाता था। विश्वात्मा वैरोचन बुद्धके रूपमें और आदितत्व ग्यारह सिरवाले बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वरके रूपमें बनाया जाता था। परन्तु अवलोकितेश्वर पुरुष नहीं स्त्रीके रूपमें होते थे और वैरोचन गणेशके रूपमें। इस सम्बन्धमें एक जातक * कथा प्रचलित है। महेश्वरकी ३००० सन्तति थी। इनमें १००० तो भले थे। इनके नेता सेनायक थे; २००० दुष्ट थे, इनके नेता विनायक थे। सेनायक वस्तुतः बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर थे। अपने भाईको सुधारनेके लिये वह उनके सामने सुन्दर स्त्री बनकर आये और इस शर्तपर विवाह करना स्वीकार किया कि वह सद्धर्म्ममें दीक्षित हो जाय। इस प्रकार स्त्रीरूप धारण करके अवलोकितेश्वरका विनायकसे योग हुआ।

एक और बात भी हो सकती है। सिंहल देशमें, जहाँके अमोघवज्र रहनेवाले थे, अवलोकितेश्वरको लोकनाथ

---

* बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाको जातक कथा कहते हैं। जो पवित्रात्मा अपने कषायोंको नष्ट करके अगले जन्ममें बुद्ध होनेवाला है वह बोधिसत्व कहलाता है।

कहते थे। लोकनाथके आठ रूप थे, जिनमें से एकका नाम गणनाथ था। अतः ऐसा मानना चाहिए कि काङ्गि-तेनमें पुरुष-मूर्ति गणनाथ अवलोकितेश्वरकी है और स्त्री मूर्ति उनकी शक्ति है।

मूर्तिके लिए यह विधान था कि वह धातुनिर्मित होनी चाहिए। उसकी ऊँचाई २२ इञ्चसे अधिक न हो। दोनों प्रतिमाएँ एक दूसरेके ठीक सामने हों, उनके हाथ एक दूसरेके शरीरका आलिङ्गन कर रहे हों, पावँतक कपड़ा लटकता हो और विनायकका सिर शक्तिके बायें कन्धेपर हो। शक्तिके दोनों कन्धे ढके होने चाहियें, विनायकका एक कन्धा खुला रह सकता है; दोनों कन्धे भी खुले हों तो कोई हर्ज नहीं है। फलक ७ में एक काङ्गि-तेन प्रतिमा दिखलायी गयी है।

यह मूर्तियाँ सामान्य लोगोंको नहीं दिखलायी जाती थीं। गर्भधातु और वज्रधातुके मण्डलोंको तो सभी उपासक देख सकते थे परन्तु काङ्गि-तेन प्रतिमा एक विशेष प्रकारके ढक्कनके नीचे छिपाकर रखी जाती थी। उसको देखनेके अधिकारी वही लोग होते थे जिनको अन्तरङ्ग उपासनाकी दीक्षा मिल चुकी होती थी। मूर्तिका एक और रूप था जिसमें एक सिर, एक शरीर, चार हाथ और चार पाँव होते थे। इसके दर्शन उन्हीं लोगोंको होते थे जो साधनाकी ऊँची भूमियोंतक पहुँच जाते थे। इस मूर्तिका अर्थ यह था कि वैरोचन और अवलोकितेश्वर, गणनाथ और उनकी शक्ति, भारतीय तन्त्रके शब्दोंमें शिव और शक्ति, का योग होगया, दोनों मिलकर एक हो गये। चार हाथ पाँव उनकी पूर्वावस्थाके और एक शरीर योगावस्थाका द्योतक है।

तुर्किस्तानमें एक मूर्ति मिली है जिसमें एक शरीर, चार हाथ, और दो पाँव हैं परन्तु उसका आसन देखनेमें दो पाँव जैसा प्रतीत होता है। सम्भव है इसमें भी काङ्गि-तेनकी गुप्त मूर्तिवाला भाव अधिक सूक्ष्म रूपसे दिखाया गया हो।

काङ्गि-तेनका अर्थ है दैव मिथुन, अर्थात् दैव युगलमूर्ति। इस ढङ्गकी मूर्तियाँ तिब्बतमें भी मिलती हैं। इनको यबयुम कहते हैं। यबयुममें देवविशेष और उसकी शक्तिकी युगलमूर्ति रहती है। दोनों एक दूसरेके सामने गले मिलनेकी मुद्रामें होती हैं। गणेशकी यबयुम मूर्तिमें शक्ति भी हस्तिमुखी बनायी जाती थी।

विद्वानोंमें इस विषयमें विवाद हैं कि मूर्तियुगलकी कल्पना चीनमें स्वतन्त्ररूपसे उदय हुई, भारतसे गयी या तिब्बतकी यबयुम प्रतिमाओंको देखकर उत्पन्न हुई। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि कल्पनाका उद्गम भारतमें ही रहा होगा। सामान्य दक्षिणमार्गकी उपासनामें तो शक्तिको इस प्रकार नहीं दिखलाते। विष्णुकी शक्ति उनकी लेटी मूर्तिके पावँ दाबती रहती है। शङ्कर अर्द्धनारीश्वररूपसे दिखलाये जाते हैं। इस विग्रहमें शिव या शक्ति किसीकी भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती। साधारणतः लक्ष्मीनारायण, हरगौरी, राधाकृष्ण एक दूसरेके बगलमें खड़े दिखलाये जाते हैं। तन्त्रोंमें देव और उसकी शक्ति गाढ़श्लेषकी मुद्रामें रहते हैं, एकका हाथ दूसरेके गलेमें रहता है। बौद्ध तन्त्रोंमें इसी बातने थोड़ा सा भिन्नरूप लिया है। गणेशकी एक धारणीका ध्यान हम उद्धृत कर चुके हैं। वह साधारण मनुष्यको अश्लील लगता है परन्तु शून्यता और करुणाकी युगलमूर्तिका जो ध्यान बताया गया है उसकी मुद्रा इससे भी अश्लील कही जा सकती है। श्रीचक्रसम्भार तन्त्रके अनुसार प्रज्ञा और उपायका सदा योग रहना चाहिये। प्रज्ञाविहीन उपायसे संसाररूपी बन्धन और उपायविहीन प्रज्ञासे निर्वाणरूपी बन्धन होता है। दोनोंके अपृथकत्व दिखलानेके लिए उनका रतिकी अवस्थामें चिन्तन करना चाहिए ताकि उनके शरीर एक दूसरेको प्रत्यङ्गमें स्पर्श करते रहें। मुझको ऐसा प्रतीत होता है कि यही भावना काङ्गि-तेनमें काम कर रही है। बहुत सम्भव है कि कोबो दाइशि या उनके गुरुने प्रज्ञा और उपायको अवलोकितेश्वर और वैरोचन बना दिया हो और फिर इन नामोंके अनुरूप उपासनाके सिद्धान्तोंकी रचना की गयी हो। यदि ऐसा हुआ हो तो यह बात भी समझमें आती है कि उन्होंने मूर्तियोंको रतिमुद्रामें न रखकर कपड़ेसे सिरसे पैरतक ढँक दिया और उनको अश्लीलताके दोषसे मुक्त कर दिया।

एक दूसरेके सामने खड़ी पुरुष और शक्तिकी युगलमूर्ति भारतीय कल्पना है ऐसा मानना निराधार नहीं है। उदाहरणके लिए फलक ७ में दिया हुआ सिक्का देखिए। यह कुषाणवंशीय सम्राट् हुविष्कका है जिनका शासनकाल विंसेण्ट स्मिथके अनुसार लगभग सं० ९३ से सं० १२३ तक था। इस समय यह लाहौर म्यूजियममें है। इसमें जो पुरुष आकृति है

उसका नाम यवन लिपिमें ओएसो (भवेश) लिखा है और स्त्री आकृतिका निना (उमा) बताया गया है। इससे प्रतीत होता है कि आजसे लगभग दो सहस्र वर्ष पहिले यहाँ शिव और सम्भवतः दूसरे देवों और उनकी शक्तियोंको आमने सामने दिखलानेकी प्रथा चल पड़ी थी।

अवलोकितेश्वर बोधिसत्वको स्त्री (या शक्ति) के रूपमे दिखलाना तो कुछ समझमें भी आता है परन्तु यह रहस्य है कि जगदात्मा वैरोचनको विनायकका रूप क्यों दिया गया। वैरोचन स्वयं एक बोधिसत्वका नाम था और गर्भधातु तथा वज्रधातुके मण्डलोंमें विनायकको चित्रके बाहरी भागमें छोटे देवोंके बीचमें स्थान दिया गया है। फिर उसी सम्प्रदायकी अन्तरङ्ग पूजामें वह इतने उत्कृष्ट पीठपर कैसे पहुँच गये ? यदि यह कहा जाय कि काङ्गि-तेनकी पुरुष मूर्ति विनायक नहीं है तो फिर उसको हस्तिमुख क्यों बनाया जाता है ? अभीतक यह रहस्य खुला नहीं है।

विनायककी इस मूर्तिकी पूजा तो होती ही थी, उनकी पृथक् प्रतिमा भी पुजती थी। वज्रधातुमें जो पाँचवें विनायक थे वह कुछ ऐसे लोकप्रिय हुए कि उनकी मूर्तियाँ देशमें सर्वत्र फैल गयीं। उनके लिए अलग मन्दिर बन गये। जापानमें गणेशजीकी पूजा अब भी कुछ बौद्ध मन्दिरोंमें होती है। वहाँ गणेशकी तीन सिर और छः हाथवाली प्रतिमाएँ मिलती हैं।

गणेशके हाथमें जो मूली है उसके सम्बन्धमें भारतमें रचित किसी पुराण या तन्त्र ग्रन्थमें कोई कथा नहीं मिलती। जापानमें इस विषयका एक आख्यान है। कहा जाता है कि प्राचीन कालमें मररुरत्सु नामका राजा था जिसको केवल मांस और मूलीसे रुचि थी। जब राज्यमें एक भी पशु न बचा तो रसोईमें मरे हुए मनुष्योंका मांस पकने लगा। जब इससे भी काम न चला तो मन्त्रियोंने प्रजामेंसे जीते मनुष्योंको पकड़वाकर मारना आरम्भ किया। इसपर प्रजामें विद्रोह हो गया। मररुरत्सु भागा। उसको कोई मार न सका। वस्तुतः वह मनुष्य नहीं वरन् असुर था जो अपनी मांस खानेकी वासनाकी तृप्तिके लिए नररूपमें आया था। वह विनायक बनकर अपने लोकको उड़ गया। इससे यह बात निकली कि विनायकको मूली पसन्द है।

यही नरमांस-भक्षी विनायक मनुष्योंके सब प्रकारके विघ्नोंको दूर करनेवाला ही नहीं प्रत्युत परलोकका मार्ग दिखानेवाला, विश्वात्माका चिह्न और पूर्ण, निर्द्वन्द्व समाधि अवस्थाका प्रतीक बन गया। किमाश्चर्य्यमतः परम् !

— —— —

विसर्जन

भारतीय अनार्य्योंके गाँवोंसे चलकर हम विनायकके साथ तुर्किस्तान, तिब्बत, मलय द्वीपपुञ्ज और चीन होते हुए जापान पहुँचे। हमने उनको कभी पुण्यकार्य्यमें विघ्न डालते देखा था, अब उनके हाथमें निर्वाणपदकी कुञ्जी देखते हैं। अपने विदेशी वेषभूषामें भी वह हमारे हैं। अब हम उनसे विदा लेते हैं। इस अवसरपर हम विसर्जन मन्त्र 'विघ्नराज क्षमस्व'के साथ साथ श्रीकाशीकेदारमाहात्म्यके रचयिताके इन शब्दोंको भी दुहराते हैं:—

विघ्नध्वान्त निवारणैकतरणिर्विघ्नाटवी हव्यवाड्,
विघ्नव्यालकुलोपमर्दगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः।
विघ्नोत्तुङ्गगिरीशमर्दनपविर्विघ्नाब्धिकुम्भोद्भवो,
विघ्नाभ्रौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु नः॥

[जो विघ्नेश्वर विघ्नान्धकारको दूर करनेके लिए एकमात्र सूर्य्यरूप हैं, विघ्नवनके दाहके लिए अग्निरूप हैं, विघ्नरूपी सर्पकुलके संहारके लिये गरुड़रूप हैं, विघ्नरूपी पतङ्गके लिए सिंहरूप हैं, विघ्नके भारी पहाड़के विदारनेके लिए वज्ररूप हैं, विघ्न समुद्रको सोखनेके लिये साक्षात् अगस्त्यरूप हैं और विघ्नकी घनघोर घटाको उड़ा देनेके लिए प्रचण्ड पवनरूप हैं, वे हम लोगोंकी रक्षा करें]❀ ॥ इतिशम् ॥

परिशिष्ट (क)

गणेशजीके कुछ नाम

गणेशजीके कई नाम पुस्तकमें यथास्थान दिये जा चुके हैं, पचास नाम एक साथ सातवें अध्यायमें दिये गये हैं। नीचे दिये पैंतीस नाम गणेशपुराणमें दिये गये गणेशकवचसे लिये गये हैं:—

विनायक, महोत्कट, भालचन्द्र, गजास्य, गणक्रीड, गिरिजासुत, दुर्मुख, पाशपाणि, गणेश, गणञ्जय, गजस्कन्ध, विघ्नविनाशन, गणनाथ, हेरम्ब, धराधर, विघ्नहर, वक्रतुण्ड, मङ्गलमूर्ति, एकदन्त, क्षिप्रप्रसादन, मयूरेश, धूमकेतु, आमोद, प्रमोद, बुद्धीश, सिद्धिदायक, उमापुत्र, गणेश्वर, विघ्नहर्ता, गजकर्ण, निधिप, ईशनन्दन, विघ्नहृत्, कपिल, विकट।

नारदपुराणके सङ्कष्टनाशन स्तोत्रमें बारह नाम दिये हुए हैं। उनके जपसे अक्षय सिद्धिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। वह बारह नाम यह हैं:—

प्रथमं वक्रतुण्डञ्च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गाक्षं गजवक्त्रं चतुर्थकम्॥
लम्बोदरं पञ्चमञ्च, षष्ठं विकटमेव च।
सप्तमं विघ्नराजञ्च, धूम्रवर्णं तथाष्टकम्॥
नवमं भालचन्द्रञ्च, दशमंतु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं, द्वादशंतु गजाननम्॥
द्वादशैतानि नामानि, त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य, सर्वसिद्धिकरं परम्॥

[इन बारहनामोंको जो मनुष्य तीनों सन्ध्याओंमें पढ़ता है उसको विघ्नका भय नहीं रहता, यह जप उत्कृष्ट और सर्वसिद्धकर है।]

काशीके जङ्गमबाड़ी मठके श्री० शिवलिङ्ग शिवाचार्य्यने श्रीगणेशाष्टोत्तरशतनामावलिः नामकी पुस्तकमें १०८ नाम दिये हैं।

परिशिष्ट (ख)

स्कन्द पुराणान्तर्गत काशीखण्डमें दिये विनायकोंके नाम

[इन विनायकोंके नाम और काशीमें इनके स्थान स्वयं महादेवके बताये हुए हैं]

ढुंढि—यह सब विनायकोंके अधिष्ठाता हैं—

अर्क, दुर्ग, भीमचण्ड, देहली, उद्दण्ड, पाशपाणि, खर्व, सिद्ध — काशीके प्रथम आवरणके रक्षक (८)

वक्रतुण्ड, एकदन्त, त्रिमुख, पञ्चास्य, हेरम्ब, विकट, वरद, मोदकप्रिय — काशीके तृतीय आवरणके रक्षक (८)

लम्बोदर, कूटदन्त, शालकटङ्कट, कूष्माण्ड, मुण्ड, विकट, राजपुत्र, प्रणव — काशीके द्वितीय आवरणके रक्षक (८)

अभयद, सिंहतुण्ड, कूणिताक्ष, क्षिप्रप्रसादन, चिन्तामणि, दन्तहस्त, पिचिण्डिल, उद्दण्डमुण्ड — काशीके चतुर्थ आवरणके रक्षक (८)

स्थूलदन्त, कलिप्रिय, चतुर्दन्त, द्वितुण्ड, ज्येष्ठ, राज, काल, नागेश — काशीके पञ्चम आवरणके रक्षक (८)

मणिकर्ण, आशा, सृष्टि, पक्ष, गजकर्ण, चित्रघण्ट, स्थूलजङ्घ, मङ्गल — काशीके छठें आवरणके रक्षक (८)

मित्र, मोद, [illegible]के नामोंका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, ज्ञान, द्वार — काशीके सातवें आवरणके रक्षक (८)

परिशिष्ट (ग)

गणेशजीका मन्दिर

गणेशके मन्दिरमें प्रधान मूर्तिकी बायीं ओर गजकर्णकी मूर्ति होनी चाहिये, दहिनी ओर सिद्धिकी, उत्तरकी ओर गौरीकी, पूर्वकी ओर बुद्धिकी, आग्नेय दिशामें बालचन्द्रकी, दक्षिणमें सरस्वतीकी, पश्चिममें कुबेरकी और पीछेकी ओर धूमक की। मन्दिरके चारों फाटकोंपर दो दो द्वारपाल बनाने चाहियें। पूर्वीय फाटकके द्वारपालोंके नाम अविघ्न और विघ्नराज हैं, दक्षिणवालोंके सुवक्त्र और बलवान, पश्चिमके गजकर्ण और गोकर्ण और उत्तरके सुसौम्य और शुभदायक। द्वारपालोंकी यह सब प्रतिमाएँ वामनाकृति और घोररूपी होनी चाहियें। सबके चार चार हाथ हों। एक हाथमें दण्ड और एक तर्जनी मुद्रामें हो। अविघ्न और विघ्नराजके शेष दोनों हाथोंमें परशु और पद्म हो, सुवक्त्र और बलवान्के खड्ग और खेटक, गजकर्ण और गोकर्णके धनुष और बाण और सुसौम्य और शुभदायकके पद्म और अङ्कुश।

गणेशका तुण्ड प्रायः बायीं ओर घूमा होता है। ऐसी मूर्तिको तमिड़में इलमबुरि विनायक कहते हैं। यदि सूंड दाहिनी ओर झुका हो तो तमिड़में उसे वलमबुरि विनायक कहते हैं।

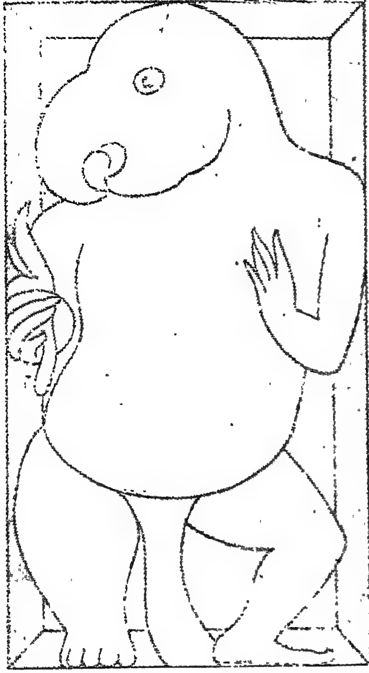
यह संकेतमात्र है। पुराणादिमें प्रतिमाओं के बनाने के प्रकार और परिमाण का विस्तृत विवरण दिया हुआ है।

———

आधारपुस्तकोंकी सूची

वाराहपुराण
स्कन्द पुराण
मत्स्य पुराण
अग्निपुराण
ब्रह्मवैवर्त पुराण
गणेश पुराण
मानव गृह्यसूत्र
कात्यायन श्रौतसूत्र
महानिर्वाण तन्त्र
शारदा तिलक
तन्त्रराज
मञ्जुश्री मूलकल्प
याज्ञवल्क्य स्मृति
शान्ति मयूख (नीलकण्ठ भट्टकृत)
प्राणतोषिणी (रामचन्द्र भट्टाचार्य्य सङ्कलित)
समन्वय (श्री भगवान्दास रचित)
श्री गणेश (नागरी प्रचारिणी पत्रिकामें श्री रायकृष्णदासका लेख)
गणेश—ए मोनोग्राफ़ ऑन दि एलिफेण्ट—फेस्ट गॉड (ऐलिस गेटी कृत)
साधनमाला
दि इन्डियन टीचर्स इन चाइना (फणीन्द्रनाथ बोस रचित)
श्रीचक्रसम्भार तन्त्र (तिब्बतीसे काज़ी दव-समदुम कृत अङ्ग्रेज़ी अनुवाद)
एलिमेण्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफ़ी (टी० ए० गोपीनाथ राव रचित)
श्रीऋग्वेदसंहिता (सायणभाष्यसमेत)
श्रीशुक्लयजुर्वेदसंहिता (उवट-महीधर भाष्य समेत)
तैत्तिरीय आरण्यक
ऐतरेय ब्राह्मण
गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषत्

——









फलक १

चार गण (विनायक)

(२२ा और ३२ा अध्याय देखिये)

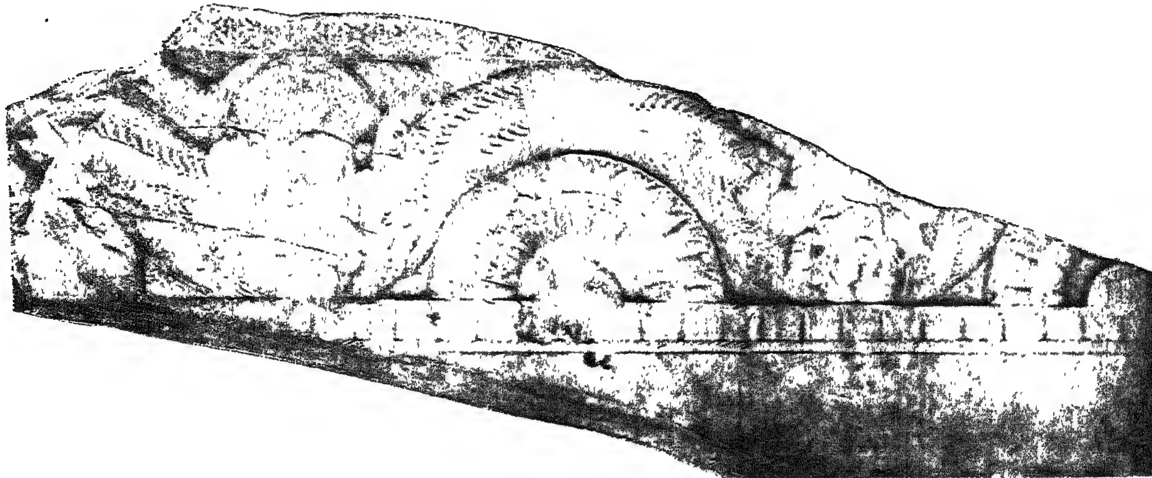


फलक २

गणपति

(२रा और ३रा अध्याय देखिये)

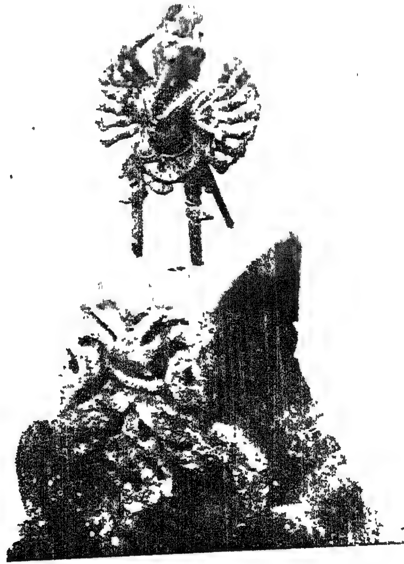




फलक २
ऊपर—मातृकाओंके साथ गणेश
नीचे—गणेश







फलक ४

ऊपर—उच्छिष्ट गणपति
नीचे—दाहिनी ओर—षोडशबाहु गणपति
बांई ओर—पञ्चमुख गणेश





फलक ५

दाहिने—नृत्य गणपति

बाएँ—हेरम्ब गणपति

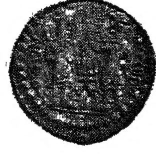


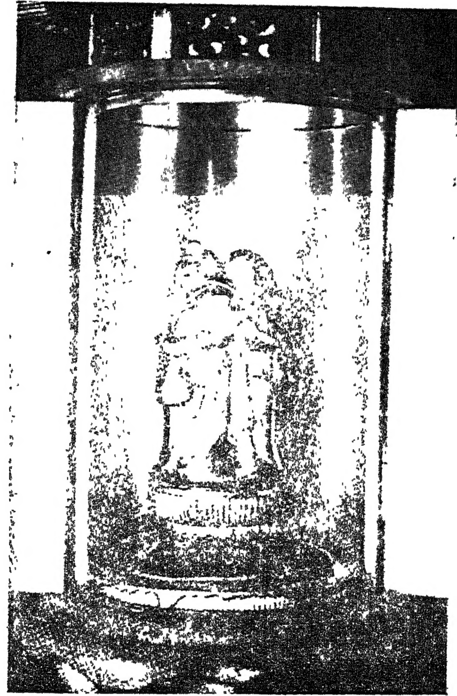


फलक ६

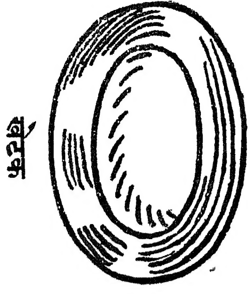
दाहिनी ओर—गणेश (जावा द्वीप)

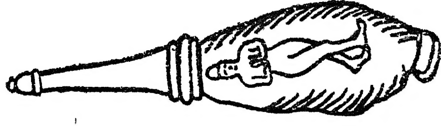
बाईं ओर—गणेश अतिवाहिक पुरुषके रूपमें (बालि द्वीपसे)

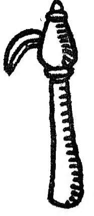


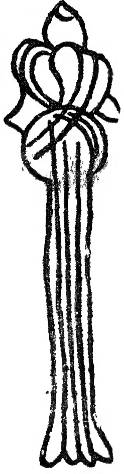


फलक ७
ऊपर—हुविष्कका सिक्का शिवशक्ति युक्त
नीचे—काँगि-तेन

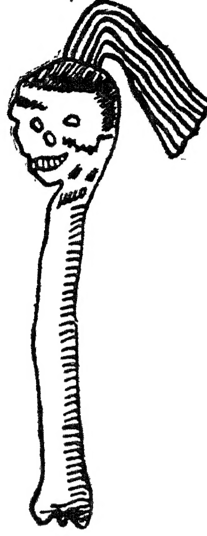

खेटक

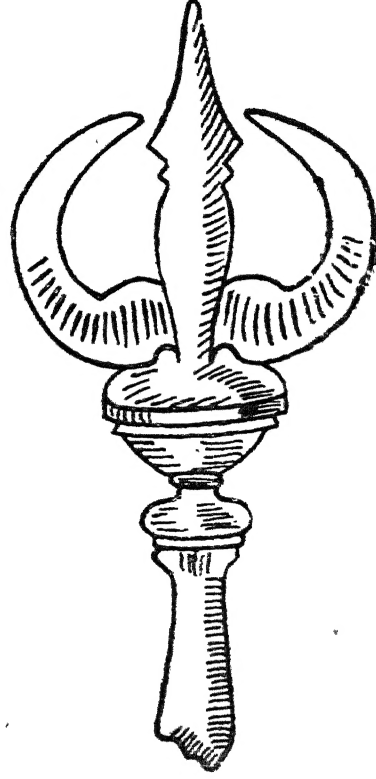

मुद्गर


अङ्कुश


पाश


परशु


खट्वाङ्ग


शूल

फलक ८

गणेशजीके आयुध